॥ ओ३म् ॥

यज्ञ क्या? क्यों? कैसे?

मदन रहेजा

यज्ञ

क्या? क्यों? कैसे?

लेखक
मदन रहेजा

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

विषय सूची

पुस्तक समीक्षा

आर्यसमाज के प्रसिद्ध लेखक श्री मदन रहेजा की अभिनव कृति **'यज्ञ क्या? क्यों? कैसे?'** की पाण्डुलिपि को पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इससे पूर्व भी श्री रहेजा की कतिपय रचनाओं को देखने का अवसर मिला है। प्रस्तुत रचना में लेखक ने वैदिक यज्ञ की पद्धति पर बड़ी ही सूक्ष्मता से विचार किया है। विशेषरूप में सम्प्रति यज्ञ पद्धति में आई विकृतियों तथा विसङ्गतियों पर दृष्टिपात ही नहीं, उन्हें दूर करने के उपाय भी सुझाये हैं। लेखक के सुझाव तर्क और प्रमाण से समन्वित हैं। उन सुझावों में कुछ पर अन्य विद्वानों की असहमति हो सकती है। व्यावहारिक धरातल पर तथा प्रचार की दृष्टि से भी सर्वथा निर्दोष पद्धति के अनुसार यज्ञ की प्रतिक्रियाओं का परिपालन कठिन अवश्य है।

पुनरपि विधियुक्त तथा शास्त्रीय निर्देशानुसार यज्ञीय प्रक्रियाओं का पालन ही पूर्णतया लाभ की दृष्टि से अपेक्षित है अन्यथा विकृतियाँ अन्ततः हानि ही पहुँचाती हैं। यज्ञ-विधि के साथ-साथ यज्ञ से सम्बन्ध लगभग सभी सम्भावित प्रश्नों पर भी श्री रहेजा ने गहराई से विचार किया है। सीमित पृष्ठों में लेखक ने बड़ी ही साफ़गोई से सरलतापूर्वक सभी ज्ञातव्य तथ्यों से पाठकों को अवगत कराया है।

लेखक का स्वाध्याय और चिन्तन अनूठा है। पेशे

से फ़ैशन डिज़ाईनर होने का प्रभाव लेखक की शैली पर भी है—सरस, सरल किन्तु बेबाक। वैदिक धर्म और यज्ञ से सम्बन्ध पुस्तकों के गम्भीर अनुशीलन ने लेखक के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है फलतः उस स्वाध्याय का प्रसाद रहेजा जी दूसरों को भी बाँटना चाहते हैं। लेखक की इस यज्ञीय भावना की मुहुर्मुहः प्रशंसा के साथ मैं आशा करता हूँ कि उनकी यह कृति उनकी पूर्व रचनाओं की भाँति ही लोकप्रिय होगी। शुभकामनाओं सहितः

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
5 सितम्बर, 2007

डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री
महोपदेशक

वेद-सुभाषित

'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' (शतपथब्राह्मण: 1.7.1.5) अर्थात् मनुष्य के लिये यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है क्योंकि इससे जल, वायु, वातावरण इत्यादि की शुद्धि होती है अतः सबको यज्ञ निष्काम भावना से करना चाहिये।

'स्वर्गकामो यजेत्' (ताण्ड्यब्राह्मण: 16.155) अर्थात् यज्ञकर्म से स्वर्ग अर्थात् सुख एवं सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति होती है।

'इमं यज्ञं वितता विश्वकर्मणा' (अथर्ववेद: 21. 35.5) अर्थात् यज्ञ ईश्वरीय आशीर्वाद (देन) है क्योंकि इस पुनीत कर्म से हम सबका जीवन उन्नत होता है।

'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः' (यजुर्वेद: 23.62) अर्थात् यज्ञ (ईश्वर) इस ब्रह्माण्ड की नाभि (केन्द्र) है क्योंकि परमात्मा ही सब जीवों के कल्याणार्थ इस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करता है।

'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः' (यजुर्वेद) अर्थात् इस संसार में जितने भी श्रेष्ठ कर्म हैं, वे सब 'यज्ञ' कहाते हैं।

'इजानः स्वर्गं यन्ति लोकम्' (अथर्ववेद: 10.4.2) अर्थात् याज्ञिक को यज्ञ द्वारा इस संसार में 'स्वर्ग लोक' (सब प्रकार के सुखों) की प्राप्ति होती है। यज्ञ से सभी की मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। अतः यज्ञ करने वाला सदा सुखी रहता है।

'प्रञ्चं यज्ञं प्रणायत सखायः' (ऋग्वेद: 10.10. 2) अर्थात् सब मनुष्यों को चाहिये कि वे कोई भी शुभ कर्म करने से पूर्व यज्ञकर्म किया करें। यह परमात्मा की ओर से विशेष आज्ञा है।

'जुहुतो प्र च तिष्ठता' (ऋग्वेद: 1.15.9) अर्थात् याज्ञिक को जीवन में यश, कीर्ति और सब सुखों की प्राप्ति होती है, दूसरे शब्दों में सबको योग्य है कि यदि आप सुख, सम्पत्ति और शान्ति चाहते हैं तो अवश्य यज्ञ किया करें।

'पाञ्चजनमाय होतारं जुषध्वम्' (वेद) अर्थात् परमात्मा का आदेश है कि पाँच प्रकार के लोग चार वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) और पाँचवें अशिक्षित और अनुसूचित जन-जातियों के लोग जो दूर-दराज़ के क्षेत्रों में रहते हैं, वे सब यज्ञकर्म किया करें।

'इंद कृण्वन्तं वेदिम्' (ऋग्वेद: 1.170.4) इस मन्त्र में यजमानों के लिये आदेश है कि वे वेदी अर्थात् यज्ञशाला (यज्ञ/अग्निहोत्र/हवन करने का

स्थान) को यज्ञ करने से पूर्व स्वच्छ सुन्दर बनाएँ और खूब सजाएँ।

'ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्योकेतुम्' (ऋग्वेद: 3.8.8) अर्थात् यज्ञकर्म सर्वश्रेष्ठ कर्म है अत: सावधानी बरतनी चाहिये कि यज्ञाग्नि में आहुति प्रदान करते समय किसी भी प्रकार की हिंसा न हो अर्थात् उस में पशु-मांस इत्यादि की आहुति कदाचित् नहीं देनी चाहिये इसलिये यज्ञ को 'अध्वर' अर्थात् हिंसा-रहित कहा गया है। इस में आग की लपटें ऊपर को उठें।

यह ऋग्वेद का सुभाषित है कि 'सब बलवान और उत्साही मनुष्यों का यह कर्तव्य है कि वे अपनी और समाज की उन्नति और कल्याण के लिये यज्ञकर्म किया करें'।

वैदिक यज्ञ मीमांसा

इस पुस्तक के लिखने का तात्पर्य मात्र यही है कि हमारे समाज में यज्ञ करने की विधि में विविधता पाई जाती है, कहीं एकरूपता नहीं दिखाई देती अतः इसके सुधार हेतु यह प्रयास है। सर्वविदित है कि भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में हर शुभ कार्य का श्रीगणेश अर्थात् शुभारम्भ यज्ञ-कर्म से किया जाता है। खेद की बात है कि हम जहाँ भी जाते हैं (देश-विदेश में, पौराणिक मन्दिरों में, आर्यसमाज मन्दिरों में, विवाह के मण्डपों में या फिर अन्य उत्सवों के अवसरों पर) वहाँ यज्ञ कर्मकाण्ड में बहुत भिन्नता पाते हैं। भारत के भिन्न-भिन्न राज्यों के भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न रीति-रिवाज़ से यज्ञ किये जाते हैं। सब पण्डित/पुरोहितगण अपने-अपने रीति-रिवाज़ और ढंग से यज्ञ कराते हैं। कुछ लोग पौराणिक ढंग से यज्ञ करते हैं, उसमें कुछ वैदिक मन्त्र होते हैं, कुछ पुराणों के होते हैं और शेष अन्य पुस्तकों से लिये जाते हैं, जबकि हमारे आर्ष ग्रन्थों एवं प्राचीन शास्त्रों में यज्ञ कर्मकाण्ड करने की विधि एक ही है। अन्य तथाकथित धर्मों में पूजा-पाठ की विधि एक है परन्तु धार्मिक कहाने वाले हम लोगों में यज्ञ कर्मकाण्ड को लेकर अनेक मत हैं। परमात्मा सबको सद्बुद्धि प्रदान करे ताकि हमारी यज्ञ पद्धति में एकरूपता हो सके।

मनुष्य-योनि सर्वश्रेष्ठ योनि कहाती है क्योंकि मात्र यही एक ऐसी योनि है जिसमें जीवात्मा को कर्म करने की पूर्णरूपेण स्वतन्त्रता प्राप्त है। वह चाहे तो अपने जीवन में सद्कर्मों से सुख प्राप्त कर सकता है, योग साधना से आनन्द का अनुभव कर सकता है और निष्काम कर्मों से मोक्ष अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन से भी मुक्ति प्राप्त कर सकता है। दूसरे अर्थों में ऐसा न करने पर मनुष्य दुःख रूपी भवसागर में गोते खाता रहता है। परमात्मा की असीम अनुकम्पा से हमें मनुष्य योनि इस कारण प्राप्त हुई है कि हम हर सम्भव शुभ से शुभ कर्म करें, अपने जीवन में सुख प्राप्त करें, निष्काम कर्म करके सबको सुख पहुँचाएँ और मृत्यु के उपरान्त इस भौतिक शरीर को त्यागकर परान्तकाल तक परमात्मा की गोद में परम-आनन्द को प्राप्त करें। यही मनुष्य योनि का परम लक्ष्य है।

वेद के तीन विषय हैं—ज्ञान, कर्म और उपासना। ज्ञानपूर्वक कर्म करना एवं निराकार परमात्मा की उपासना करना।

वैदिक संध्या के द्वारा हम प्रतिदिन दो बार (प्रातः और सायं) ईश्वर की उपासना करते हैं। 'ईश्वर स्तुति-प्रार्थना-उपासना' विषय अत्यन्त गम्भीर है अतः इस पुस्तिका में स्थान-कमी के कारण, उसकी विस्तृत चर्चा न करके संक्षिप्त जानकारी अवश्य देंगे। इस पुस्तिका में हम मात्र वैदिक यज्ञ-पद्धति के विषय को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

वेदों में परम पिता परमात्मा को 'आनन्दस्वरूप' कहा है क्योंकि परमात्मा आनन्द का स्रोत है और जो

उनके सान्निध्य में रहता है वह भी आनन्दमय हो जाता है। परमात्मा को यज्ञस्वरूप भी कहते हैं क्योंकि उसके समस्त कार्य यज्ञमय (परोपकारार्थ) होते हैं अर्थात् सब जीवों के हितार्थ होते हैं। प्राचीन काल से 'यज्ञ' भारतीय संस्कृति और सभ्यता का एक अभिन्न अंग/चिह्न रहा है इसलिये भारतीय संस्कृति में हर शुभ कार्य करने से पूर्व 'यज्ञकर्म' करने का विधान है। 'प्रत्येक परोपकारी कार्य को 'यज्ञ' कहते हैं। यज्ञ शब्द के तीन अर्थ होते हैं—1. देव-पूजा, 2. संगतिकरण और 3. दान।

(1) देव-पूजा: अर्थात् जड़ और चेतन (मूर्तिमान/अमूर्तिमान) देवों की पूजा अर्थात् जड़ पृथिवी, जल, वायु आदि की शुद्धि करना तथा प्रदूषण रहित करके उनका सदुपयोग करना और चेतन मूर्तिमान देवों का आदर-सत्कार करना, यथाशक्ति तन-मन-धन से सेवा करना और उनकी उचित आज्ञाओं का पालन करना।

(2) संगतिकरण: अर्थात् अच्छे लोगों (धार्मिक तथा विद्वानों) का संग/मित्रता बनाए रखना। सन्त-महात्माओं के प्रवचनों को ध्यानपूर्वक सुनना, विचारना और जो वेदानुकूल हो उसे अपने जीवन में उतारने का यथा सम्भव प्रयास करते रहना।

(3) दान: अर्थात् श्रद्धा, प्रेम और त्याग भाव से उपयोगी वस्तु (धन, धान्य, आभूषण, वस्त्रादि) को सुपात्रों की सेवा में समर्पित करना। दान केवल सुपात्र (जो प्राप्त-दान का सदुपयोग करता है) को ही देना चाहिये, कुपात्र (जो प्राप्त-दान का दुरुपयोग करता है) को कदाचित् नहीं।

परम पिता परमात्मा के कार्य: सृष्टि की उत्पति,

स्थिति और प्रलय करना, सब मनुष्यों के कल्याण और उत्थान हेतु सृष्टि के आदि में आदि ऋषियों द्वारा वेद (ज्ञान) से परिचित कराना, सब जीवों के कर्मों का लेखा-जोखा रखना तथा उनके कर्मों को सही समय पर, उचित मात्रा में, पक्षपात-रहित जाति-आयु-भोग के माध्यम से फल/दण्ड प्रदान करना...इत्यादि।

यज्ञ (अग्निहोत्र/हवन) एक प्रकार का कर्मकाण्ड है, सर्वश्रेष्ठ गुणों का प्रतीक है, जिससे याज्ञिक (यज्ञकर्त्ता) अनेक बातें सीख सकता है। **अग्नि** प्रकाश का प्रतीक है, अग्नि से प्रकाश मिलता है तथा उसकी ज्वालाएँ ऊपर की ओर जाती हैं अतः वे हमें सिखाती हैं कि मनुष्य को अपने जीवन में सदा प्रकाश अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति करनी चाहिये जिस से वह सदैव ऊपर अर्थात् प्रगति के मार्ग पर अग्रसर रहे। **घी** स्नेह और मित्रता का प्रतीक है। **सामग्री** संगठन का प्रतीक है और **समिधा** समर्पण का प्रतीक है। **'स्वाहा'** यज्ञ का आत्मा है अर्थात् 'स्वाहा' के बिना यज्ञ करना निरर्थक है। **'इदं न मम'** यज्ञ के प्राण हैं।

कोई भी कर्म छोटा या बड़ा नहीं होता, यदि आप निष्काम कर्म की भावना से करते हैं वह सब यज्ञकर्म कहाता है। अगर आप किसी प्यासे प्राणी (मनुष्य, पशु-पक्षी इत्यादि) को जल पिलाते हैं, भूखे व्यक्ति या पशु को भोजन खिलाते हैं, किसी दुःखी व्यक्ति के दुःख को कम करने का प्रयास करते हैं, किसी जरूरतमन्द गरीब रोगी को औषधि दिलाते हैं, कमजोर वर्ग के बच्चे को पढ़ाते हैं या उसकी पढ़ाई के लिये प्रबन्ध करते हैं, रोते बच्चे को हँसाते हैं इत्यादि अनेक

कार्य हैं ये सभी यज्ञ कर्म कहाते हैं। यदि आपकी नेक कमाई का दान सुपात्र को जाता है, अस्पतालों में रोगियों के इलाज के लिये जाता है, अनाथालयों में जाता है, वृद्धाश्रमों में जाता है, वैदिक गुरुकुलों में जाता है इत्यादि और भी अनेक संस्थाओं में जाता है तो ये सब यज्ञकर्म हैं। इससे आपके धन का सदुपयोग होता है। यही निष्काम कर्म है और यही यज्ञकर्म है।

यज्ञ करने से ईश्वर के प्रति 'श्रद्धा और प्रेम' उजागर होता है, मन में शान्ति और एकाग्रता आती है, आपसी मित्रता बढ़ती है, प्रदूषण की निवृत्ति होती है, वायु-मण्डल शुद्ध-पवित्र होता है, अनेक प्रकार के मानसिक और शारीरिक रोगों का निवारण होता है, जिससे व्यक्ति की आयु बढ़ती है, याज्ञिक धन-ऐश्वर्यों का स्वामी बनता है अर्थात् यज्ञ करने वाले की सम्पूर्ण यथोचित मनोवांछित कामनाएँ पूर्ण होती हैं, वह इहलोक में स्वर्ग को प्राप्त होता है तथा अपने परलोक को सुधारता है। इसलिये वेद में यज्ञकर्म को 'श्रेष्ठतम कर्म' की उपाधि प्रदान की है क्योंकि यज्ञकर्म से सब जीवों का उपकार व उद्धार होता है।

यज्ञ केवल सामग्री या घी की आहुतियों को स्वाहा कहकर यज्ञकुण्ड में डालने का नाम नहीं है अपितु यज्ञ के अनेक अर्थ हैं। 'देवपूजा, संगतिकरण और दान' के अतिरिक्त मनुष्य जितने भी शुभ-कर्म (मन, वचन और शरीर से) अपने लिये करता है, अपने परिवार और समाज के लिये करता है तो वे सभी यज्ञकर्म हैं। इन के अतिरिक्त यदि मनुष्य अपने परिवार, समाज, देश और विश्व के हितार्थ जो भी कार्य अपना कर्तव्य समझकर

करता है तो उसके वही कार्य यज्ञ की श्रेणी में आते हैं। सही अर्थों में जिस कार्य में व्यक्ति की त्याग, समर्पण और निष्काम कर्म की पवित्र भावना छिपी होती है ऐसे सभी कार्य 'यज्ञकर्म' की कोटि में आते हैं।

स्वर्गः जिस परिवार या घर में प्रतिदिन अग्निहोत्र होता है, ईश्वर-स्तुति-प्रार्थना-उपासना के मन्त्रों का सस्वर उच्चारण होता है, माता-पिता, अतिथि और अपने से बड़ों का आदर-सत्कार होता है, चरित्रवान पति और सुशील धर्मपत्नी तथा उनकी सन्तानें आपस में प्रेमपूर्वक शान्ति से रहते हैं, घर में सब सदस्य एक-दूसरे से सत्यभाषण और मृदुभाषण करते हैं, तनावरहित वातावरण होता है, सुख-सम्पत्ति-सुविधाएँ तथा समृद्धि का वास होता है, सगे-सम्बन्धियों तथा मित्रों का आवागमन होता है, परिवार के सब सदस्य स्वस्थ होते हैं, यात्रा के सब सुख-साधन विद्यमान होते हैं, सब एक-दूसरे की बातें मानते हैं, सबमें दान देने की प्रवृत्ति होती है, सेवक आज्ञाकारी होते हैं, समाज में उनकी आन-मान-शान होती है इत्यादि जहाँ ऐसी परिस्थितियाँ विद्यमान होती हैं। बस, ऐसे परिवार में जीवन जीने को 'स्वर्ग' कहते हैं और जहाँ स्वर्ग के विपरीत परिस्थितियाँ होती हैं तो वह घर हो या परिवार वह 'नरक' कहाता है। स्वर्ग और नरक स्थान विशेष का नाम नहीं होता अपितु व्यक्ति की निजी सुखमय, शान्तिप्रद एवं अनुकूल परिस्थितियों का नाम स्वर्ग है और उसकी विपरीत अर्थात् दुःखमय अशान्तिप्रद एवं प्रतिकूल परिस्थितियों का नाम नरक कहाता है। **इत्योम्।**

वैदिक यज्ञकुण्ड का आकार
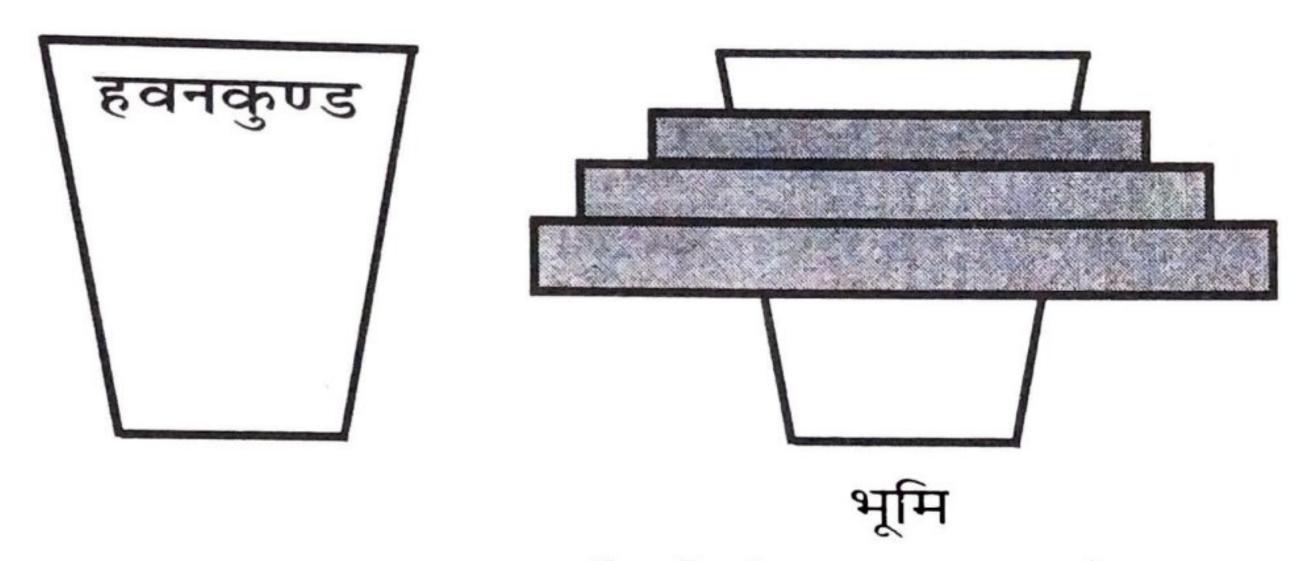
तीसरी मेखला दूसरी के ऊपर
दूसरी मेखला पहली के ऊपर
पहली मेखला भूमि के ऊपर

(यज्ञकुण्ड तीन मेखलाओं के मध्य-स्थान में रखें और उसका शेष भाग भूमि के भीतर होना चाहिए) यदि ऐसा सम्भव नहीं है तो यज्ञकुण्ड लोहे के stand पर भी रख सकते हैं।

महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ

वैदिक हवन-कुण्ड ऊपर दिखाये चित्र के आकार जैसा होता है जो चारों ओर से एक समान दिखाई देता है।

जैसे ऊपर चित्र में दिखाया गया है—हवनकुण्ड का ऊपरी खुला भाग, भूमि पर रखी तीन मेखलाओं के मध्य-स्थान में इस प्रकार रखा जाता है कि उसका शेष भाग भूमि के भीतर (खुदे हुए गड्ढे में) रखा जाना चाहिये।

यज्ञकुण्ड के ऊपर का भाग पूरा खुला होता है और भीतरी भाग की चारों दीवारें बन्द होती हैं।

यज्ञकुण्ड का खुला भाग जितनी नाप का होता है, उदाहरण: चारों दीवारें 16"इंच×16" इंच तथा चौरस 90° कोण, तो उसकी गहराई भी उतनी ही अर्थात् 16" इंच होगी परन्तु उसके तलवे की नाप उसकी एक चौथाई अर्थात् 4"×4" इंच होनी चाहिये।

विशेष उत्सवादि के समय यदि यज्ञमण्डप खुले मैदान में स्थित है तो भूमि में गड्ढा खोदकर उपर्युक्त पैमाने से छोटा या बड़ा यज्ञकुण्ड बनाया जा सकता है।

हवनकुण्ड यज्ञशाला (यज्ञमण्डप) के मध्य में रखा जाता है।

हवनकुण्ड ताम्बे या मिट्टी का बना होना चाहिये, लोहे का कदाचित् नहीं।

दैनिक यज्ञ हो या साप्ताहिक या जब कभी भी यज्ञ करने की इच्छा हो तो यज्ञ करने के पूर्व 'हवनकुण्ड' को अच्छी तरह से धोकर स्वच्छ कर लेना चाहिये।

विशेष: घर में प्रतिदिन/साप्ताहिक या कभी-कभी यज्ञ करने वालों के लिये अपनी आवश्यकतानुसार परिमाण (साईज़) का हवनकुण्ड तथा उसका स्टैंड खरीदना चाहिये। यज्ञ सर्वश्रेष्ठ कर्म है अत: यज्ञकुण्ड सर्वश्रेष्ठ धातु जैसे सोने या चाँदी का, नहीं तो ताम्बे का भी बनवा सकते हैं, परन्तु किसी भी परिस्थिति में लोहे का नहीं होना चाहिये क्योंकि गरम लोहे से निकलने वाली वायु/गैस हमारे शरीर के लिये हानिकारक होती हैं, जिससे लाभ की बजाय हानि होती है।

इत्योम्।

यज्ञ-आचार संहिता

यज्ञ-प्रेमी याजिकों के हितार्थ
यज्ञ-सम्बन्धी विचार-विमर्श

1. ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या) और देवयज्ञ (यज्ञ/अग्निहोत्र/हवन) करने का सही समयः प्रातः-कालीन सन्ध्या (ईश्वर स्तुति-प्रार्थना-उपासना तथा ध्यान प्रक्रिया) सूर्योदय से पूर्व ब्रह्म मुहूर्त अर्थात् प्रातः 4.30 से 6.00 बजे के भीतर करनी चाहिये तथा सायंकालीन सन्ध्या सूर्यास्त के समय यज्ञ के पश्चात् करनी चाहिये, यही ब्रह्मयज्ञ कहाता है। अग्निहोत्र सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व करने का समय है (सत्यार्थप्रकाशः समुल्लास 3)। अग्निहोत्र, हवन, होम या यज्ञकर्म इत्यादि एक-दूसरे के ही पर्यायवाची शब्द हैं जिनको धार्मिक भाषा में देवयज्ञ कहते हैं। यज्ञकर्म सूर्य के प्रकाश के होते ही करना चाहिये क्योंकि वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण से लाभकारी होता है।

सन्ध्या (ध्यान) और यज्ञ (अग्निहोत्र) करना सब मनुष्यों का अनिवार्यरूप से कर्त्तव्य है। (सामवेदः 82)

'प्रातः प्रातगृर्हपतिर्नो अग्नि सायं सायं सौमनस्य दाता।' (अथर्ववेदः 19.7.3)

'सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः जलजसौमनस्य दाता।' (अथर्ववेदः 19.7.4)

वेद के अनुसार अग्निहोत्र सूर्योदय के पश्चात् और

सूर्यास्त के पूर्व करने का समय है। महर्षि दयानन्द (सत्यार्थप्रकाश: तृतीय समुल्लास)

सन्ध्या को 'ब्रह्मयज्ञ' और यज्ञ को 'देवयज्ञ' कहते हैं।

अग्नि=ईश्वर, होत्र=हवन या दान करना अतः अग्निहोत्र का अर्थ है=ईश्वर की आज्ञा पालन तथा जल और वायु की शुद्धि के लिये जो हवन करते हैं (पञ्चमहायज्ञविधि)।

2. श्रेष्ठतमं-कर्म 'यज्ञ' जितने भी कार्य परोपकार की भावना से किये जाते हैं उन सबको 'यज्ञ' कहते हैं। जितने भी कर्मकाण्ड अग्निहोत्र/हवन इत्यादि किये जाते हैं वे सब परोपकार के प्रतीक मात्र हैं।

'यज्ञकर्म' करने का मुख्य उद्देश्य है वातावरण को प्रदूषण रहित शुद्ध बनाना, जिससे जीवमात्र का कल्याण होता है तथा सबको स्वस्थ निरोग और सुखी जीवन मिलता है।

अतः वेद भगवान् का कथन है 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' अर्थात् इस संसार में सब मनुष्यों के लिये 'यज्ञ' ही '**श्रेष्ठतमं कर्म**' है अतः सब बुद्धिजीवी मनुष्यों का कर्तव्य है कि वे बड़े आदर, श्रद्धा, प्रेम और समर्पण भाव से यज्ञ किया करें। (यजुर्वेद: 2.14)

अग्निहोत्र से वायु, वृष्टि जल की शुद्धि होकर वृष्टि द्वारा संसार को सुख प्राप्त होना अर्थात् शुद्ध वायु का-सुगंधित वायु का 'वासास्पर्श, खान-पान से आरोग्य, बुद्धि बल, पराक्रम बल के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अनुष्ठान पूरा होना, इसीलिये इसको देवयज्ञ कहते हैं। (सत्यार्थप्रकाश: चतुर्थ समुल्लास)

यज्ञ के ब्रह्मा, पुरोहित, विवेकशील यजमान तथा

सभी अतिथियों को यज्ञशाला में पधारने से पूर्व स्नानादि कर शुद्ध-पवित्र होना चाहिये क्योंकि 'श्रेष्ठतमाय कर्मणे' यज्ञ अत्युत्तम सर्वोपकारक पवित्रतम कर्म हैं। (यजुर्वेदः 1.1)

यजमान एवं उपस्थित सभी अतिथियों को यज्ञ की गतिविधियाँ प्रारम्भ होने से लेकर यज्ञ के सम्पन्न होने पर्यन्त आपस में वार्तालाप या धीरे से भी बात-चीत या इशारा नहीं करना चाहिये (संस्कारविधि) और न ही देरे से पधारने वाले किसी सज्जन को 'नमस्कार' या मुस्कराकर स्वागत करना चाहिये। सबको उचित है कि वे केवल ईश्वर के रस में तृप्त होकर, यज्ञ की गतिविधियों में ध्यानपूर्वक समर्पण भाव से भाग लें और परमात्मा के निज नाम 'ओ३म्' का स्मरण करें।

यज्ञ और यज्ञ के पदार्थों का तिरस्कार कभी न करें। (यजु. 5.42)

जो मनुष्य अग्निहोत्रादि यज्ञों को प्रतिदिन करते हैं वे समस्त संसार के सुखों को बढ़ाते हैं। (यजु. 18.42)

3. मन्त्रोच्चारणः—प्राचीन ऋषि-परम्परा द्वारा सम्मत वैदिक सिद्धान्तों के अनुकूल निर्धारित, जिन-जिन 'वेद तथा गृह्यसूत्र' के मन्त्रों का यज्ञ/अग्निहोत्र/हवन तथा सभी वैदिक संस्कारों में पाठ करने का विधान है, उन्हीं मन्त्रों का पाठ करना चाहिये। अन्य का नहीं।

मन्त्रोचारण यजमान ही करे, न शीघ्र और न ही विलम्ब से, किन्तु मध्यभाग से करे जैसे कि जिस वेद का उच्चारण है (संस्कारविधिः सामान्य प्रकरण)। यदि यजमान अशिक्षित है, मन्त्रोच्चारण में असमर्थ है तो पुरोहित/ऋत्विक् उच्चारण करें। शेष व्यक्ति सुनें या

मन में अथवा मन्द स्वर में उच्चारण करें और विद्वानों से सुनकर अपना उच्चारण सही करें।

जिस मन्त्र में ऽ चिह्न हो वहाँ 'अ' का उच्चारण करना अशुद्ध है, नहीं करना चाहिये–जैसे **'यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः'** यहाँ ऽ का उच्चारण पूर्वरूप (मौन) है।

यजमान का कर्तव्य है कि वह अनिवार्य रूप से यज्ञ के मन्त्रों का उच्चारण करे **'अग्निं वर्धन्तु नो गिरः।'** (ऋ. 19.58.5)

यदि कोई यजमान मन्त्रों का पाठ करने में असमर्थ है तो ऐसी परिस्थिति में यज्ञ का पुरोहित मन्त्रोच्चारण करे तथा सब अतिथिगण और दर्शक उसे श्रद्धा और प्रेम से ध्यानपूर्वक सुनें। यदि अतिथिगण मन्त्र–पाठ का शुद्धोच्चारण कर सकते हैं तो वे मन में मन्द स्वर में उच्चारण अवश्य करें।

मन्त्रोच्चारण सबके साथ सस्वर मधुरतापूर्वक करें, न ऊँची और न ही धीमी आवाज़ में करें क्योंकि यज्ञ का वातावरण धार्मिक, पवित्र और ईश्वर को समर्पित होता है अतः बड़ी श्रद्धा और प्रेम से करें। (ऋग्वेदः 10.156.1)

यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि सन्ध्या में मन्त्रोच्चारण मन में होता है परन्तु यज्ञ (अग्निहोत्र) में मन्त्रपाठ इतने ऊँचे स्वर में करें–जिससे पास में बैठे सज्जन भी सुन सकें।

मन्त्रोच्चारण से मन्त्र कण्ठस्थ होते हैं तथा वेदों की रक्षा भी होती है और मन की एकाग्रता बनी रहती है जिससे आनन्द की अनुभूति होती है।

4. यज्ञशाला:–एक साफ़–सुथरे निर्धारित स्थान, जहाँ नियमित रूप से अग्निहोत्र/हवन/होम/यज्ञ किया जाता है, उसे 'यज्ञशाला' या 'यज्ञमण्डप' कहते हैं। यज्ञशाला को रंगोली से सुसज्जित करना चाहिये।

विवाह संस्कार के निमित्त बनी यज्ञशाला को 'कल्याणमण्डप' कहते हैं।

हमारे ऋषियों का सुझाव है कि 'अच्छे प्रकार से ध्यान अर्थात् सन्ध्या के लिये भी एक अलग स्थान (कमरा) सुरक्षित/निर्धारित करना चाहिये, ऐसा करने से 'सन्ध्या' करने में रुचि बनी रहती है और मन को शान्ति मिलती है।

5. आसन व्यवस्था:–जिस स्थिति/अवस्था में सुखपूर्वक बैठा जा सके, उसे 'आसन' (बैठने की स्थिति) कहते हैं (योगदर्शन: समाधि पाद 46) 'आसन' कुशा या सूती गद्दे का होना चाहिये जिससे लम्बे समय तक बैठने में सुविधा हो।

बृहद् यज्ञों में **ब्रह्मा** (यज्ञ निरीक्षक), **अध्वर्यु** (यज्ञ मण्डप की व्यवस्था करने वाला एवं ऋग्वेद के मन्त्रों का पाठ करने वाला), **उद्‌गाता** (सामवेदीय मन्त्रों का सस्वर पाठ करने वाला) और **होता** (यजुर्वेदीय मन्त्रोच्चारण करने वाला) के आसन निर्धारित होते हैं। साधारण साप्ताहिक यज्ञ में ब्रह्मा नहीं होता मात्र पुरोहित और यजमान होते हैं।

होता या यजामन का आसन पश्चिम में और मुख पूर्व दिशा में निर्धारित होता है।

यज्ञ के ब्रह्मा तथा पुरोहित का आसन दक्षिण में और मुख उत्तर दिशा की ओर सुरक्षित होता है।

अध्वर्यु का आसन उत्तर में व मुख दक्षिण दिशा में होता है।

उद्गाता का आसन पूर्व में और मुख पश्चिम दिशा में सुरक्षित होता है।

हवनकुण्ड यज्ञशाला के मध्य में रखा जाता है। यज्ञ का आयोजन करने वाले यजमान को इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि ब्रह्मा का आसन उपस्थित यजमान तथा दर्शकों से थोड़ा सा ऊँचा (यज्ञाग्नि के स्तर में थोड़ा सा नीचे) हो ताकि वह यज्ञकर्म की सम्पूर्ण गतिविधियों का अच्छी तरह से निरीक्षण कर सके। यज्ञ में कोई त्रुटि न हो, इसका पूरा उत्तरदायित्व ब्रह्मा पर होता है।

ब्रह्मा/यजमान का आसन यज्ञाग्नि के स्तर से ऊँचा होना चाहिये। (ऋग्वेद: 10.88.19) (निरुक्त: 7.31)

6. यजमान की वेशभूषा:—यज्ञ के ब्रह्मा तथा पुरोहित को 'श्वेत ढीले वस्त्र (धोती-कुर्ता) पहनने चाहिये तथा पीले रंग की शॉल ओढ़नी चाहिये। यजमान दम्पति (पति-पत्नी) को यज्ञ के समय चार वस्त्र नये, ढीले, स्वच्छ और रेशमी या सूती धारण करने चाहियें। (महर्षिकृत संस्कारविधि)। यहाँ लिखने का यह भाव है कि वस्त्र नये और साफ़-सुथरे पहनकर ही यज्ञ करना चाहिये। विद्वान् ब्राह्मणों के अनुसार, हो सके तो यजमानों को धोती-कुर्ता ही पहनने चाहिये क्योंकि ये वस्त्र बैठने में सुविधाजनक होते हैं।

पति-पत्नी के लिये दो-दो धोती-कुर्ता या ऋतु अनुसार वस्त्र पहनने चाहिये।

7. यज्ञ कर्मकाण्ड का अधिकार:—ब्रह्मा, पुरोहित

तथा सभी यजमानों को यज्ञकर्म करने से पूर्व अनिवार्यरूप से यज्ञोपवीत (जिसको जनेऊ या उपवीत भी कहते हैं) धारण करना चाहिये और यज्ञ के पश्चात् भी उसे धारण किये रहना चाहिये, यह यज्ञ की आचार संहिता है। यज्ञोपवीत धारण करना ही, यजमान को यज्ञकर्म करने का अधिकार प्रदान करता है।

'यज्ञोपवीत' यज्ञ करने का अधिकार प्रदान करता है, शुभकर्म करने की प्रेरणा देता है और अशुभ कर्मों से बचाता है।

यज्ञोपवीत वैदिक संस्कृति और सभ्यता का एक प्रतीक है।

वैदिक धर्मानुसार 'संन्यासाश्रम में प्रवेश करने वाले इच्छुक व्यक्तियों का धारण किया हुआ यज्ञोपवीत उतार दिया जाता है क्योंकि संन्यासियों का पूरा जीवन 'यज्ञमय' (अग्निरूप परोपकारार्थ) होता है।

स्मरण रहे कि सन्ध्या (परमात्मा का ध्यान) करने का अधिकार सब मनुष्यों को समान रूप से प्राप्त है।

8. यज्ञोपयोगी सावधानियाँ—यज्ञ (अग्निहोत्र/हवन) के प्रयोग में आने वाले पात्र (बर्तन) स्वर्ण, चाँदी, ताम्बे के धातु के या काष्ठ के होने चाहिये (संस्कारविधि)। सामान्यत: इन पात्रों की आवश्यकता पड़ती है—एक दीपक, घी रखने के लिये एक चौड़ा पात्र (आज्यस्थाली) तथा एक लम्बी स्रुवा (लम्बी पकड़ वाला चम्मच), एक कलश (प्रोक्षणीपात्र) जिससे जल सेचन करते हैं। सामग्री के चार और स्थालीपाक आदि रखने के लिये (शाकल्यपात्र) पात्र, चार आचमन पात्रों के साथ में चार छोटे चम्मच, एक पात्र में उबले

हुए थोड़ी मात्रा में नमक-रहित या मीठे चावल, एक नारियल तथा आम के पत्तों से ढका जल से भरा एक कलश (अग्निपुराण 94.6.7.64) जो जल प्रसेचन के काम आता है। अग्नि प्रदीप्त करने के लिये आठ अंगुल लम्बी (लगभग 7") तथा उंगलियों जितनी पतली तीन समिधाएँ (चंदन की समिधाएँ हों तो बेहतर)। उपर्युक्त के अतिरिक्त चार हाथ पोंछने के छोटे सूती वस्त्र या Napkins या Tissue Papers और यजमानों एवं अतिथियों के लिये यज्ञोपवीत उपलब्ध होने चाहियें।

अग्न्याधान से पूर्व, अग्नि प्रज्वलित करने के लिये एक नई दीयासलाई, कपूर (या सूखे नारियल के पतले लम्बे टुकड़े), एक पंखा और एक चिमटा पास में रखा होना चाहिए।

यज्ञ में काम आने वाली सभी वस्तुएँ जैसे यज्ञ-शाला, यज्ञ-कुण्ड, यज्ञ-पात्र, सामग्री, समिधाएँ तथा आसानों इत्यादि की स्वच्छता और शुद्धता का ध्यान रखना जरूरी है क्योंकि इन्हीं से याज्ञिक के मन में यज्ञ के प्रति श्रद्धा और प्रेम जागृत होता है जो यज्ञ-कर्म के लिये परमावश्यक है।

9. आचमन क्रियाः—आचमन करना यज्ञ की एक आवश्यक क्रिया है। यज्ञकर्म प्रारम्भ होने से पूर्व ब्रह्मा, पुरोहित, पण्डित, यजमान और यज्ञ में भाग ले रहे उपस्थित सब अतिथियों को अपनी दाहिनी हथेली पर आचमन पात्र से क्रमशः तीन बार जल लेकर, हर मन्त्र की समाप्ति पर हथेली के पिछले भाग से, उस जल को ग्रहण करना चाहिये। इस क्रिया को 'आचमन'

कहते हैं। यज्ञ के मध्य में भी यदि ब्रह्मा, पुरोहित अथवा यजमान का गला सूखने लगे या प्यास लगे अथवा सुस्ती का अनुभव होवे तो जल ग्रहण कर सकता है।

स्मरण रहे कि जिस कलश से हम वेदी के चारों ओर जल सेचन करते हैं, उस कलश के जल का प्रयोग प्यास बुझाने के लिये नहीं करें। यजमान अथवा यज्ञ-व्यवस्थापक को चाहिये कि वे यज्ञ प्रारम्भ होने से पहले ही प्यास बुझाने के लिये जल की व्यवस्था करें या अपने साथ अलग से एक जल-पात्र रखें।

प्रायः देखा गया है कि अधिकतर याज्ञिक तथा अतिथिगण पौराणिकों की देखा-देखी आचमन के पश्चात् आचमन वाले हाथ को अपने सिर के ऊपर से ले जाते हैं जो सरासर अवैदिक पद्धति है। आचमन वाले गीले हाथ को स्वच्छ वस्त्र (नैप्किन या रूमाल) से पोंछ देना चाहिये।

10. संकल्प मन्त्रः—प्रत्येक कार्य के आरम्भ में संकल्प अवश्य बोलना चाहिये। यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है अतः संकल्प अवश्य रूप से लेना चाहिये। **स्वामी मुनीश्वरानन्द सरस्वती (हापुड़)** के अनुसार संकल्प दो रूप के होते हैं 1. लघु और 2. बृहद्। जब व्यक्ति स्वयं सन्ध्योपासना आदि करता है, तब लघु संकल्प का उच्चारण किया जाता है। लघु संकल्प का पाठ इस प्रकार है: **'ओ३म् तत् सत् स्वस्ति इह अद्य ममोपात्तदुरित क्षय द्वारा...श्री परमेश्वरप्रीत्यर्थ प्रातः (सायं) सन्ध्योपासनं अहं क़रिष्ये।** बृहत् संकल्प का उच्चारण तब किया जाता है जब ऋत्विज् (पुरोहित)

यजमान से नैमित्तिक यज्ञ याग आदि कराता है। उस संकल्प का स्वरूप **'ओ३म् ब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्द्धे. ..करिष्ये'** इस प्रकार है। कर्म आदि में संकल्प बोलने का यह पक्ष मुख्य वैदिक परम्परा के अनुकूल है। इसलिये हमें तत् कर्म के आरम्भ में संकल्प बोलने में पौराणिकता का आभास नहीं होना चाहिये।

11. रक्षा-बन्धन/कलावा/मौली:—पौराणिक यज्ञों में ब्राह्मण अपने यजमानों की कलाई पर लाल-पीले रंग का एक धागा बाँधते हैं जिसे रक्षा बन्धन या कलावा या मौली कहते हैं परन्तु हमारे वैदिक यज्ञ में किसी भी प्रकार की मौली या कलावा आदि नहीं बाँधते। आजकल कुछ आर्यसमाजों में भी इसी प्रकार की पौराणिकता दिखाई देने लगी है। हम अपने आर्यसमाज के सुशिक्षित पुरोहितों से नम्र निवेदन करते हैं कि वे पौराणिकता के पाखण्डों को शीघ्रातिशीघ्र बन्द कर दें और अपनी विशुद्ध वैदिक यज्ञ पद्धति को अपनाएँ।

12. माथे पर तिलक या टीका लगाना:—कलावे की भाँति माथे पर तिलक या टीका इत्यादि लगाना भी पौराणिक है। वैदिक यज्ञ-पद्धति में कहीं भी जैसे मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, पराशरस्मृति आदि मुख्य स्मृति ग्रन्थों में तिलक-प्रतिपादक वर्णन उपलब्ध नहीं हैं। अतः तिलक आदि माथे पर लगाना वैदिक नहीं है। इससे दूर रहें, यही ठीक है।

ग्रीष्म ऋतु में चंदन का तिलक धारण करने से मस्तिष्क ठंडा रहता है अतः उसे लगाने में आपत्ति नहीं है परन्तु स्मरण रहे कि यह तिलक किसी भी प्रकार से धर्म या धार्मिकता का प्रतीक नहीं है।

13. ईश्वर स्तुति-प्रर्थना-उपासना के आठ मन्त्रः—सब वैदिक संस्कारों के प्रारम्भ में ईश्वर स्तुति-प्रार्थना-उपासना के आठ मन्त्रों का अर्थ सहित पाठ/उच्चारण, एक पण्डित या विद्वान् को स्थिरचित्त होकर परमात्मा में ध्यान लगाकर, करना चाहिये और दूसरी ओर सब उपस्थित लोग उनका श्रवण करें और उन मन्त्रों पर चिन्तन करें ('आर्य सत्संग गुटका' सार्वदेशिक धर्मार्य सभा से स्वीकृत पद्धति के आधार पर प्रकाशित)। यदि उपस्थित लोग मन्त्रोच्चारण करना चाहें तो वे अपने मन में करें और जिनको मन्त्रपाठ नहीं आता, वे मन्त्रोच्चारण और उनके अर्थों को ध्यान से सुनें और विचारें।

ऐसा भी देखा गया है कि कभी-कभी ईश्वर स्तुति-प्रार्थना-उपासना के मन्त्र बोलते समय याज्ञिक अन्य काम भी करते रहते हैं, जैसे यज्ञ-कुण्ड में समिधाओं का चयन करते हैं, दीपक में घी डालते है तथा उसकी बत्ती घी लगाकर व्यवस्थित करते हैं या एक-दूसरे को इशारा करते हैं अर्थात् उनका ध्यान उपर्युक्त मन्त्रों में नहीं होता। उस समय मात्र मन्त्रों पर ही ध्यान देना चाहिये ताकि हमारे मन में एकाग्रता उत्पन्न हो।

14. दीपक प्रज्वलित करने का समयः—महर्षि दयानन्द सरस्वती के आदेशानुसार स्तुति-प्रार्थना-उपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण, वरण, आचमन, अंग-स्पर्श और समिधा चयन इन सातों विधियों को करने के पश्चात् ही दीपक को जलाना चाहिये (संस्कारविधिः सामान्य प्रकरण)।

15. अग्न्याधान: महर्षि दयानन्द के आदेशानुसार इसके दो विधान हैं—(1) 'ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य के घर से अग्नि लाकर वेदी के बीच में धरे और उसके ऊपर छोटी-छोटी समिधाएँ तथा कपूर रखकर अगले मन्त्र पाठ से अग्नि को प्रज्वलित करें, अथवा (2) 'घृत का दीपक जला, उससे कपूर से लगा, किसी एक पात्र में धर उसमें छोटी-छोटी लकड़ी लगा के यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा, यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़ कर अगले मन्त्र से आधान करे।' (सं. वि. सामान्य प्रकरण)

चम्मच में कपूर को जलाकर सीधे यज्ञकुण्ड में अग्नि प्रविष्ट करना गलत परम्परा है, अशुद्ध विधि है—इसे तत्काल बन्द कर देना चाहिये।

16. समिदाधान:—समिदाधान की तीन समिधाएँ यजमान (पति) द्वारा एक-एक करके अर्पित की जाती हैं। यजमान की धर्मपत्नी का कर्तव्य है कि वह भी पति के हाथों को नीचे से स्पर्श करे। अग्नि प्रदीप्त करने के लिये चन्दन या पलाशादि की तीन समिधाएँ (आठ अंगुल लगभग 7" लम्बी और मोटाई अंगूठे के परिमाण से अधिक न हो (ऐसा कात्यायन ऋषि का मत है) पूरी तरह से घी पात्र में डूबी होनी चाहियें। इन समिधाओं पर सामग्री नहीं लगानी चाहिये। एक-एक समिधा को घी पात्र से निकालकर, दोनों हाथों की दसों उंगलियों से स्पर्श करते हुए मन्त्रोच्चारण की समाप्ति पर यज्ञकुण्ड में प्रज्वलित अग्नि के ऊपर (पहली समिधा उत्तर में, दूसरी दक्षिण में और तीसरी समिधा मध्य में) श्रद्धापूर्वक चढ़ावें। यहाँ घी या सामग्री की

आहुति देने का विधान नहीं है और न ही समिदाधान के बीच में दूसरी समिधा/समिधाएँ चढ़ाने का नियम है। समिदाधान के पश्चात् ही छोटी और मोटी समिधाएँ रखी जा सकती हैं। तदनन्तर अग्नि प्रज्वलित करने हेतु पाँच घृताहुति-मन्त्रों में केवल घृत की आहुतियाँ एक-एक मन्त्र की समाप्ति पर 'स्वाहा' के साथ प्रदान की जाती हैं।)

17. 'ओ३म्' का उच्चारण:—यह सर्वविदित है कि अनेक पौराणिक पण्डित और लोग हर मन्त्र से पहले 'ओ३म्' का उच्चारण करते हैं जो वैदिक मान्यताओं तथा आर्ष ग्रन्थों के विरुद्ध है। सन्ध्या या प्रार्थना के सभी मन्त्रों के पूर्व या अन्त में 'ओ३म्' का उच्चारण नहीं किया जाता, यह सरासर ग़लत परम्परा है क्योंकि 'ओ३म्' का उच्चारण विभिन्न विषय, प्रसंग तथा अध्याय के प्रथम मन्त्र से पूर्व करना शास्त्रोक्त नियमानुसार ठीक है, प्रत्येक मन्त्र के पहले नहीं। इसके प्रमाण के लिये पाठकवृन्द महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत प्रसिद्ध पुस्तक **'पञ्च महायज्ञ विधि'** को देख सकते हैं। इसी सन्दर्भ में अनेक प्रमाण मिलते हैं: **'ओमभ्यादाने'** (अष्टाध्यायी: 8.2.87) एवं **'प्रणवष्टे'** (अष्टाध्यायी: 8.2.89)। जिज्ञासु पाठकवृन्द से निवेदन है कि वे इस विषय की अधिक जानकारी के लिये पं. युधिष्ठिर मीमांसक लिखित पुस्तक 'नित्य कर्म विधि' का स्वाध्याय करें।

विशेष: **पञ्चमहायज्ञविधि: तथा संस्कारविधि: का लेखन** महर्षि दयानन्द सरस्वती ने प्राचीन ऋषियों की वैदिक मान्यताओं तथा अनेक आर्ष ग्रन्थों की

सूचनाओं के आधार पर प्रकाशित किये हैं। विस्तृत जानकारी हेतु महर्षि कृत पञ्चमहायज्ञविधिः तथा '**संस्कारविधिः**' का स्वाध्याय करें। उनके अलावा '**यज्ञपद्धतिप्रकाश**' (सार्वदेशिक-धर्मार्य-सभा द्वारा सम्पादित प्रमाणित संस्करण) को भी अवश्य पढ़ें।

इस सन्दर्भ में वर्तमान में सुप्रसिद्ध स्वामी मुनीश्वरानन्द जी सरस्वती का मानना है—'किसी भी विनियोग-वचन के नीचे तत्तत् कार्य में विनियुक्त समस्त मन्त्रों के आदि में प्लुत ओ३म् नहीं बोलना चाहिये। यदि किसी को कोई आवश्यक बात करने में पाठ का क्रम टूट जाता है, तब पुनः ओ३म् का उच्चारण करके मन्त्र-पाठ का आरम्भ करना चाहिये और पाठ की समाप्ति पर चतुर्मात्रिक ओम् का उच्चारण करके पाठ समाप्त करना चाहिये।

यह विषय प्रतिशाख्यों का है। यह नियम श्रौत मन्त्रों के लिये है। गृह्य अर्थात् स्मार्त मन्त्रों के लिये नहीं। स्मार्त मन्त्रों को बोलते समय प्रत्येक मन्त्र के आरम्भ में ओ३म् का उच्चारण किया जाता है, जैसे आचमन के तीन मन्त्रों के आरम्भ में ओ३म् का उच्चारण है। इसी प्रकार अन्य स्मार्त मन्त्रों के आरम्भ में समझना चाहिये।'

18. जल-प्रसेचन-विधिः—हवनकुण्ड के चारों ओर जल छिड़कने की प्रक्रिया से प्रायः अनेक लोग अपरिचित हैं। इस विषय में 14 जनवरी, 2007 की 'आर्य जगत्' पत्रिका में **स्वामी मुनीश्वरानन्द सरस्वती** के छपे लेख यज्ञ के विधि-विधान में एकरूपता स्थापित हो' के अनुसार 'हवनकुण्ड के चारों ओर जल

छिड़कने की प्रक्रिया से सम्पूर्ण आर्यसमाज का ऋत्विक् वर्ग अपरिचित है। इसलिये सर्वत्र यह क्रिया गलत ढंग से चली आ रही है। इस प्रक्रिया को समझने के लिये आपको यह ज्ञान लेना चाहिये कि यज्ञ-प्रक्रियाओं में प्रत्येक कार्य दक्षिण दिशा से आरम्भ होकर उत्तर दिशा अथवा पश्चिम दिशा से आरम्भ होकर पूर्व दिशा में समाप्त होता है। इसी प्रकार जहाँ पर जलधारा समाप्त होती है, वहाँ से जल छिड़कने के लिये जल के समाप्त छोर से अन्दर की ओर से आरम्भ होता है। जल छिड़कने का कार्य हवनकुण्ड की निचली मेखला से नौ इंच (9') भूमि छोड़कर जल छिड़का जाता है। जल छिड़कते समय घृत सामग्री आदि सम्पूर्ण हवि-द्रव्य जलधारा के अन्दर की ओर होने चाहिये।

यह प्रक्रिया संस्काराविधि और गृह्यसूत्रों में कुछ अन्तर से मिलती है। जल प्रसेचन की प्रक्रिया की संस्कारविधि और गृह्यसूत्रों में एकरूपता है।

संस्कारविधि के अनुसार जल छिड़कने की प्रक्रिया-

1. **'ओम् अदितेऽनुमन्यस्व।'** इस मन्त्र से हवनकुण्ड की पूर्व दिशा में दक्षिण से आरम्भ करके उत्तर कोण की समाप्ति तक जल छिड़का जाता है।

2. **'ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्वाम्'।** इस मन्त्र से हवन-कुण्ड की पश्चिम दिशा में दक्षिण कोण से प्रारम्भ करके उत्तर कोण तक जल छिड़का जाता है।

3. **'ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व।'** इस मन्त्र से हवन-कुण्ड की उत्तर दिशा में पश्चिम कोण से प्रारम्भ करके पूर्व कोण की समाप्ति तक जल छिड़का जाता है।

4. **'ओं देव सवित...स्वदतु'॥** इस मन्त्र से चौथी

बार हवन-कुण्ड के चारों ओर अर्थात् ईशान कोण से जल की धारा की समाप्ति वाले छोर के अन्दर की ओर से जल छिड़कना प्रारम्भ होगा।

19. आहुति-पदार्थ:—आर्ष ग्रन्थों में यजमानों के लिये सब जीवों के कल्याणार्थ आहुति प्रदान करने का विधान है, जिसमें गाय का (अच्छी तरह से गरम किया हुआ) शुद्ध घी (यजुर्वेद: 17.55, 20.45 एवं 21.39) और सामग्री में सुगन्धित, रोगविनाशक, शुद्ध घी से बने मिष्टान्न इत्यादि होने चाहिये।

नोट: वैदिक सिद्धान्तानुसार यज्ञकर्म काण्ड में मात्र गाय का शुद्ध घी ही प्रयोग में लाया जाता है, अन्य का नहीं। अग्निहोत्र में वनस्पति घी या भैंस इत्यादि के दूध से बने घी का प्रयोग निषिद्ध है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार गाय का दूध सतोगुणी होता है, सात्विक होता है क्योंकि इसके (दूध तथा दूध से बने सभी पदार्थ) सेवन करने से मन में शान्ति, दया, करुणा, प्रेम, प्रसन्नता, स्फूर्ति, उत्साह इत्यादि सात्विक भाव उत्पन्न होते हैं जिससे मनुष्य सात्विक गुणों वाला बनता है। भैंस का दूध तमोगुणी होता है जिसके सेवन से तमोगुणी वृत्तियाँ जागृत होती हैं जैसे अशान्ति, क्रोध, घृणा, क्रूरता, बेचैनी, सुस्ती इत्यादि भाव उत्पन्न होते हैं। सर्वविदित है कि प्राय: भैंस का दूध और घी का सेवन करने वाले (भैंस की भाँति) शरीर के भारी एवं अधिक ऊँघते और सोते रहते हैं और दूसरी ओर गाय का दूध और घी का सेवन करने वाले सदा चुस्त एवं फुरतीले होते हैं। इसीलिये महाभारत के यक्ष-युधिष्ठिर संवाद में भी स्पष्ट रूप से बताया गया है कि पृथिवी

पर गाय का दूध ही अमृत है।

यज्ञकर्म प्रारम्भ होने से पूर्व घृत भरे पात्र को अच्छी तरह से तपा लेना चाहिये। यज्ञ के बीच में यज्ञाग्नि के ऊपर घृत-पात्र को गरम करना गलत है अतः इस प्रचलित परम्परा को तुरन्त समाप्त कर देना चाहिये।

20. सामग्री पदार्थः—सब जीवों के कल्याण के लिये किये जाने वाले अग्निहोत्र में चार प्रकार के द्रव्यों के मिश्रण से सामग्री बनाई जाती है। औषधीय गुणों से युक्त तथा सुगन्धित (कस्तूरी, केशर, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री इत्यादि), पुष्टिकारक (घृत, दुग्ध, फल, कन्द, अन्न, चावल, गेहूँ, उड़द इत्यादि), मिष्ट (गुड़, शकर, शहद, छुहारे, द्राख आदि सूखे मेवे) और रोगनाशक (सोमलता अर्थात् गिलोय आदि औषधियाँ) जड़ी-बूटियाँ तथा सूखे फूल/पत्तियाँ और अनेक सूखे मेवों (Dry Fruits) को कूटकर एक बारीक मिश्रण बनाया जाता है, जिसे 'सामग्री' कहते हैं। ऋतुओं के अनुसार सामग्री के पदार्थों का चयन किया जाता है।

आजकल बाज़ारों में तैयार सामग्री उपलब्ध होती है परन्तु थोड़ा सा परिश्रम किया जाए तो शुद्ध सामग्री अपने घर में ही बनाई जा सकती है।

सामग्री बनाने की विस्तृत जानकारी हेतु पाठकगण महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत ग्रन्थ 'ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका', 'ऋग्वेद भाष्य' और 'संस्कारविधि' में देख सकते हैं।

21. समिधा चयनः—लकड़ी बहुत ही उपयोगी वस्तु है जिस का उपयोग अनेक-अनेक क्षेत्रों में किया

जाता है। यज्ञ में काम आने वाली लकड़ियों को लकड़ी न कहकर 'समिधा' कहते हैं। यज्ञकुण्ड के परिमाण के हिसाब से, यज्ञ के लिये उपयोगी छोटी-बड़ी सब समिधाओं को यज्ञकुण्ड में चढ़ाने (डालने) से पहले अच्छी तरह से साफ करके धूप में पूर्णरूप से सुखा लेना चाहिये ताकि उसमें से जीव-जन्तु निकल जाएँ और उनमें गीलापन न रहे। क्योंकि गीली समिधाओं के प्रयोग से अग्नि ठीक तरह से प्रज्वलित नहीं होती और धुआँ उत्पन्न होता है जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है (संस्कारविधि)।

कोयला जलाकर यज्ञ नहीं किया जाता। (महर्षि दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्य: 22/15)

यज्ञाग्नि में पशु-मांस इत्यादि अभक्ष्य पदार्थों की आहुति देना वर्जित है। निरुक्त 2.7 में 'यज्ञ' को 'अध्वर' की संज्ञा दी गई है अर्थात् यज्ञकर्म में किसी भी प्रकार की हिंसा नहीं होती। अत: अग्नि में डालने से पहले समिधाओं की ध्यानपूर्वक जाँच कर लेनी चाहिये कि उसमें कोई जीव-जन्तु तो नहीं हैं।

समिधा अनेक प्रकार की हो सकती हैं परन्तु 'संस्कारविधि' के अनुसार उसका चयन ऋतु के अनुसार करना चाहिये जिसकी विस्तृत जानकारी महर्षिकृत संस्कारविधि से प्राप्त कर सकते हैं।

संक्षेप में प्रयुक्त समिधा—1. जिस लकड़ी के जलने से कार्बन-डाई-ऑक्साईड गैस की मात्रा कम से कम निकलती हो। 2. जिस लकड़ी के जलने से कार्बन-मोनो-ऑक्साईड उत्पन्न न होती हो या अन्य कोई विषैली गैस पैदा न होती हो। 3. लकड़ी कठोर

नहीं हो, इसकी पहचान यह है कि जिस लकड़ी को दीमक खाती है अर्थात् कोमल हो। 4. उस वृक्ष की लकड़ी जिस के पत्ते तोड़ने पर दूध जैसा द्रव्य निकलता हो। 5. ऐसी लकड़ी जो जलने पर राख हो जाती है, कोयला नहीं।

हमारे प्राचीन ऋषियों की खोज के अनुसार चन्दन, आम, पीपल, बड़, गूलर, पलाश, शमी जैसे वृक्षों की लकड़ियाँ समिधा के रूप में प्रयोग करनी उचित होती हैं।

याज्ञिकों की जानकारी के लिये ऋग्वेद के मन्त्र (8.102.21) में स्पष्ट आज्ञा प्रदान है कि 'जिस वृक्ष की लकड़ियों को दीमक या उसकी जाति का कोई कीट (कीड़ा) खाता है, वह सब पीपल, ढाक, आम आदि की कोमल लकड़ियाँ तेरा प्रदीपक हैं। अर्थात् उपर्युक्त वृक्ष की लकड़ी को समिधा के उपयोग में लाना उचित है।

अध्वर अर्थात् हिंसा रहित (ऋग्वेद: 1.1.8, ऋ. 1.26.1, ऋ.1.44.13), (यजुर्वेद: 1.1, 3.23, 6.11), (अथर्ववेद: 4.24.3, 1.4.2, 5.12.2, 18.2.2) और (मनुस्मृति: 3.16) इत्यादि, ऐसे अनेक मन्त्र हैं जिनमें कहा गया है कि 'सब प्रकार के जीवों की रक्षा करो', 'उनकी हत्या मत करो'। यज्ञ में किसी भी प्रकार के पशु-मांस का प्रयोग करना वर्जित ही नहीं, घोर अपराध है—महा-पाप है।

22. 'स्वाहा' का अर्थ:—'जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही जीभ से बोलें, विपरीत नहीं।' (स. प्र.: तृतीय समु.)

'स्वाहा' उच्चारण किये बिना आहुति देने का कोई अर्थ (लाभ) नहीं होता अर्थात् आहुति देना व्यर्थ है।

'यज्ञाग्नि में 'स्वाहा' के साथ प्रदान की गई आहुति देवताओं को प्राप्त हो।' (निरुक्त: 8.20)

'स्वाहा' को यज्ञ का 'आत्मा' कहा गया है।

'स्वाहा' का अर्थ है त्याग और समर्पण भाव से प्रदान करना।

स्वाहा के उच्चारण से अंहकार/अभिमान समाप्त होता है। अत: 'स्वाहा' का उच्चारण यज्ञ में उपस्थित सभी ब्रह्मा, पुरोहित, यजमान और अतिथियों को करना चाहिये ताकि लगे कि वे यज्ञ में भाग ले रहे हैं।

'स्वाहा' का एक और अर्थ है 'समाज में सबके साथ सत्य और मधुर भाषण करें।

'स्वाहा' का एक और भी अर्थ है 'सत्य वाणी' अर्थात् 'वेद वाणी सत्य है अत: हम उस वेद वाणी का समर्थन करते हैं और उसे स्वीकार करते हैं।

जैसे पूर्व में लिख आए हैं कि स्वाहा शब्द के अनेक अर्थ हैं। वैदिक विद्वानों के अनुसार सु+आह=स्वाहा=(1) सुमधुर बोलो। (2) सत्य बोलो और अपनाओ। (3) जो मन में है, वही वाणी से बोलो और अपने कहे अनुसार कर्म करो अर्थात् मन-वचन-कर्म में कोई अन्तर न हो। (4) जो कर्म करो समर्पण भावना से करो। (5) त्यागपूर्वक कर्म करो। (6) स्वाहा का अर्थ होता है-काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, राग-द्वेष, मान-अपमान, चुगली, अहंकार, बदले की भावना इत्यादि जैसे अपने अन्दर छिपी हुई बुराइयों को आहुत करना।

23. आहुति प्रदान करने का सही समयः—शुद्ध घी तथा सामग्री की आहुतियाँ मन्त्रोच्चारण के अन्त में 'स्वाहा' उच्चारण के साथ यज्ञकुण्ड के मध्य में प्रज्वलित अग्नि के ऊपर ही ठीक प्रकार से प्रदान करनी चाहिये जिससे घी या सामग्री यज्ञकुण्ड के बाहर न गिरने पाये। यह यज्ञ की एक विशेष आचार-संहिता है–'पहले मन्त्र पाठ तदनन्तर क्रिया' और इस अनुशासन का पालन यज्ञ में भाग ले रहे, यज्ञवेदी पर बैठे, सभी सदस्यों को अनिवार्य रूप से करना चाहिये। इसकी जानकारी हेतु देखें–

'नाम्...वाचस्नर्थत्वात्' (मीमांसादर्शनः 12.3.25)

'मन्त्रान्तैहि कर्मान्तिः सान्निपात्योऽअभिधानात्' (कात्यायन श्रौतसूत्रः 1.35) यहाँ कात्यायन ऋषि का स्पष्ट आदेश है कि मन्त्र समाप्ति के पश्चात् ही क्रिया प्रारम्भ करनी चाहिये।

मन्त्रोच्चारण के पश्चात् 'स्वाहा' के साथ ही यज्ञकुण्ड में अग्नि में शुद्ध घृत तथा सामग्री की आहुति प्रदान करनी चाहिये। (शतपथब्राह्मणः 1.5.3.13, 3.3.2.7)

'स्वाहा यज्ञं कृणोतन्' (ऋग्वेदः 1.13.12) इस मन्त्रांश में भी वही आदेश है कि 'मन्त्रोच्चारण के पश्चात् ही 'स्वाहा' उच्चारण के साथ ही आहुति प्रदान करने की क्रिया करनी चाहिये।'

घृत तथा सामग्री की आहुतियाँ सदा अग्नि के ऊपर ही दी जाती हैं अन्य समिधाओं पर नहीं और इसी प्रकार जो आहुतियाँ यज्ञकुण्ड के उत्तर और दक्षिण में प्रदान की जाती हैं, वह भी प्रज्वलित समिधाओं या अग्नि के ऊपर उत्तर और दक्षिण भाग में देनी उचित

हैं। अनजली समिधाओं पर कदाचित् नहीं। देखा गया है कि यजमान अनजली समिधाओं को प्रज्वलित करने के भाव से उनके ऊपर घी अधिक मात्रा में डालते हैं—यह ग़लत है क्योंकि इससे अग्नि मंद हो जाती है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के निर्देशानुसार प्रत्येक मनुष्य को कम से कम सोलह आहुतियाँ प्रदान करनी चाहियें और अधिक आहुतियाँ देने की इच्छा हो तो **'ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव॥'** इस मन्त्र और पूर्वोक्त गायत्री मन्त्र; **(ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥)** से आहुति देनी चाहियें। (स. प्र.: तृतीय समु.)

याज्ञिकों को योग्य है कि वे दैनिक अग्निहोत्र के सभी मन्त्र कण्ठस्थ कर लें और यज्ञ करते समय उनका प्रेम और श्रद्धा से उच्चारण करें। और यदि उन्हें मन्त्र कण्ठस्थ नहीं हैं तो वे उन मन्त्रों को ध्यान से सुनें और आहुति प्रदान करते समय अपना पूरा ध्यान आहुति तथा हवनकुण्ड की अग्नि पर रखें। अनेक स्थानों पर देखा गया है कि यजमान तथा दूसरे लोग एक हाथ में पुस्तक लेकर मन्त्र पाठ करने का प्रयास करते रहते हैं और दूसरे हाथ से आहुतियाँ प्रदान करते हैं, यह उचित नहीं है क्योंकि इससे उनका ध्यान विचलित होता रहता है।

24. स्रुवा एवं सामग्री पकड़ने की विधिः—सामग्री को तीन 1. अनामिका (हाथ की दूसरी उंगली जिसमें अँगूठी पहनते हैं), 2. मध्यमा (बीच की लम्बी उंगली) और 3. (अँगूठे) से पकड़ना चाहिये। अनेक

लोगों को देखा गया है कि वे हाथ की पाँचों उंगलियों से सामग्री लेते हैं यह ग़लत है। तर्जनी अहंकार का प्रतीक है और सबसे छोटी उंगली, बहुत छोटी होने के कारण इस पवित्रतम कार्य के प्रयोग में नहीं लाई जाती है अतः उपर्युक्त बताई विधि से ही सामग्री पकड़ने का अभ्यास करना चाहिये और स्रुवा को कलम की तरह पकड़ना चाहिये। (संस्कारविधिः सामान्य प्रकरण)

25. अग्निहोत्र में सावधानीः—सुरक्षा के दृष्टिकोण से बुद्धिजीवी यजमानों को चाहिये कि वे यज्ञ प्रारम्भ करने से पूर्व सूखी सामग्री में थोड़ा सा घृत मिला लिया करें क्योंकि सूखी सामग्री की आहुतियाँ प्रदान करने से यज्ञाग्नि से चिनगारियाँ उत्पन्न होकर उड़ती रहती हैं इससे यजमानों तथा यज्ञ में भाग ले रहे अन्य व्यक्तियों के वस्त्र जल सकते हैं। इसके अतिरिक्त ये चिनगारियाँ यज्ञशाला के लिये भी खतरनाक साबित हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त सूखी सामग्री के कण 'श्वास द्वारा फेफड़ों के भीतर प्रवेश होने से अनेक प्रकार के रोग भी उत्पन्न होने की आशंका बनी रहती है।

26. जिज्ञासु यजमानः—यदि यजमान को यज्ञ की गतिविधियों के बारे में कोई जिज्ञासा हो तो वह बिना झिझक के यज्ञ सम्पन्न होने के पश्चात् ब्रह्मा या पुरोहित से प्रश्न पूछ सकता है। वैसे तो यज्ञ की सभी क्रियाएँ वैज्ञानिक दृष्टिकोण से शत-प्रतिशत ठीक होती हैं अतः उनको जानने का अधिकार सबको है और पूछना भी चाहिये।

27. शुद्ध मन्त्रोच्चारणः—यज्ञ में उपस्थित ब्रह्मा, पुरोहित, यजमान तथा यज्ञ में भाग ले रहे अतिथिगण

को चाहिये कि वे सभी एक–साथ में तथा एक स्वर में, यज्ञ के मन्त्रों का पाठ किया करें। ऐसा करने से मन में शान्ति और स्वयं को आनन्द का अनुभव होने लगता है। अशुद्ध/गलत मन्त्रोच्चारण से मन्त्र के अर्थ/भाव विपरीत हो जाते हैं जिससे अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

28. दानदाता का त्याग-भावः—शुद्ध घृत तथा सामग्री की आहुति यज्ञकुण्ड में परिमाणानुसार प्रदान करने में कभी कृपणता (कंजूसी) नहीं करनी चाहिये। कंजूस व्यक्ति सदा कंजूस ही रहता है और जो दानदाता उदार हृदय से दान करता है वह जीवन में सदा सुखी, समृद्ध और आनन्दित रहता है।

29. स्विष्टकृदाहुतिः 'स्विष्टकृदाहुति' (आश्वलायन: 1.10.22) जो केवल शुद्ध घी या भात की देनी चाहिये (संस्कारविधि, आर्य सत्संग गुटका) 'स्विष्टकृदाहुति' देवपूजा की एक विशेष आहुति है जो मीठे खाद्य पदार्थ की नहीं होनी चाहिये अपितु केवल घी या बिना नमक के पके चावल की ही देनी चाहिये। स्मरण रहे कि 'स्विष्टकृदाहुति' सबको (ब्रह्मा, पुरोहित और यजमान) देनी चाहिये। यज्ञ में भाग ले रहे दर्शक और अतिथिगण को नहीं।

बिना नमक के पके चावल का अभिप्राय यह है कि चावल फीके न हों अपितु मीठे हों (घी, दूध और शकर को मिलाकर रखें जब तक एकरस हो जाएँ) इसलिये 'स्विष्टकृदाहुति' केवल घी या सुगन्धित घृतयुक्त भात से या अकेले मीठे भात से दी जानी चाहिये। बाजार से लाए मीठे पदार्थ की आहुति कदाचित् नहीं देनी चाहिये।

'**स्विष्टकृत आहुति**' का अर्थ है 'इष्टसुखकारिणी' अर्थात् अच्छे प्रकार से चाहे हुए सुख को (प्रदान) करने वाली आहुति (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका: राजधर्मविषय) स्विष्टकृत् अर्थात् अच्छे प्रकार से सुख को करने वाला।

प्रधान यज्ञ के पश्चात् ही स्विष्टकृत आहुति देने का विधान है। यह आहुति प्रधान हवन की पुष्कलता के लिये होती है अतः यज्ञ की समाप्ति पर ही दी जाती है, पहले नहीं।

30. गृहिणियों का यज्ञ—यज्ञ-वेदी पर बैठकर यज्ञकर्म के पश्चात् यज्ञकुण्ड में 'बलिवैश्वदेव यज्ञ' की विशेष आहुतियाँ महिलाओं द्वारा प्रदान करने की नई परम्परा अवैदिक और गलत है क्योंकि 'बलिवैश्वदेव यज्ञ' की आहुतियाँ घर में भोजन पकाने के पश्चात् पाकशाला की अग्नि में प्रदान करने का नियम है। ये आहुतियाँ गृहिणियों के लिये हैं जिसमें घर में पके (बिना नमक के) अन्न की आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं। यही 'बलिवैश्वदेव यज्ञ' करने की उचित विधि है। यह इस यज्ञ का प्रथम भाग है तथा दूसरे भाग में भोजन करने से पूर्व भोजन का थोड़ा सा हिस्सा 'भूखे, जरूरतमन्द लोगों तथा अन्य प्राणियों (छोटे जीव-जन्तु और पशु जैसे बिल्ली, कुत्ता इत्यादि) के लिये अलग रखें और समय निकालकर उन प्राणियों तक पहुँचायें।

31. पूर्णाहुतिः—पूर्णाहुति यज्ञ की समाप्ति का सूचक है। इसमें स्रुवा में घी भरकर 'ओ३म् सर्वं वै पूर्णं स्वाहा' का उच्चारण करके एक आहुति दी जाती है और इसी प्रकार और दो बार वैसे ही मन्त्रोच्चारण

करके दूसरी और तीसरी आहुतियाँ यज्ञकुण्ड में प्रज्वलित अग्नि के ऊपर देने का विधान है। कुल तीन आहुतियाँ ही प्रदान की जाती हैं। गोला डालने का विधान पौराणिक है, वैदिक नहीं। अतः इस वेद-विरुद्ध पौराणिक परम्परा को तुरन्त बन्द कर देना चाहिये। पौराणिक परम्परा में सब हवि पदार्थ प्रयोग में लाये जाते हैं। वैदिक विशुद्ध अनुष्ठान पद्धति में इनका कोई स्थान नहीं है।

32. ब्रह्मा और पुरोहितों का सम्मानः—यज्ञ प्रारम्भ होने से पूर्व उपस्थित ब्रह्मा तथा पुरोहितों/ पण्डितों का सम्मान पुष्पमाला, नारियल तथा वस्त्रों इत्यादि से करना चाहिये। ब्रह्मा, पुरोहितों/पण्डितों और यजमान आदि को कुमकुम/चावल इत्यादि से तिलक/टीका लगाना अवैदिक परम्परा है क्योंकि ऐसा वर्णन किसी भी आर्ष (प्रामाणिक वैदिक) ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है।

सामाजिक उत्सवों के अवसर पर केसर मिश्रित चन्दन का तिलक लगाया जाता है (चंदन का तिलक गरमी के दिनों में माथे को ठंडा रखता है, ठीक है) परन्तु इसका यज्ञ कर्मकाण्ड या धर्म/कर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है।

नमस्कार, आसन, अन्न, जल, वस्त्र, पात्र, धन, दान आदि के दान से उत्तम प्रकार से यथासम्भव सत्कार करें (संस्कारविधिः सामान्य प्रकरण)।

33. दान का अर्थः—ऊपर भूमिका में लिख आए हैं कि 'यज्ञ' के तीन अर्थ या भाग हैं—देवपूजा, संगतिकरण और दान।

इन तीनों के बिना यज्ञ सम्पन्न नहीं होता अत: किसी भी सुपात्र व्यक्ति या संस्था के कल्याण तथा उत्थान हेतु प्रदान की जाने वाली सहायता राशि तथा वस्तु 'दान' कहाती है। 'दान' श्रद्धा और प्रेम से भेंट किया जाता है। यज्ञ के सन्दर्भ में 'दान' की परिभाषा है—त्याग एवं समर्पण भाव से अपना सर्वस्व ईश्वर को अर्पित करना।

दान सुपात्र को ही देना चाहिये, कुपात्र को कदाचित् नहीं। (स. प्र.: एकादश समुल्लास)।

स्मरण रहे कि दान माँगा नहीं जाता, अपनी इच्छा से भेंट किया जाता है।

दान की वस्तुएँ—फल, वस्त्र, बरतन, आभूषण, धनराशि इत्यादि अनेक उपयोगी वस्तुएँ भेंट की जा सकती हैं।

विद्या-दान सर्वश्रेष्ठ दान कहाता है। (ऋ.1.120.6)

लोकैषणा की भावना से दिया गया 'दान' पूर्णरूपेण फलित नहीं होता।

दान दाता कभी निर्धन नहीं होता अपितु वह अधिक धनवान और समृद्ध होता है। (वेद)

उत्तम दाता उसको कहते हैं जो देश, काल और पात्र को जानकर सत्य विद्या, धर्म की उन्नति रूप परोपकारार्थ देवे। मध्यम वह है जो कीर्ति वा स्वार्थ के लिये दान करे। (स. प्र.: एकादश समुल्लास)

मनुष्यों को चाहिए कि सत्यपुरुषों की ही सेवा और सुपात्रों को ही दान किया करो। (यजु. 12.30)

दान देना प्रसन्नता करने वाला होता है। (ऋ.1.102.5)

संसार में जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ,

पृथिवी, वस्त्र, तिल, स्वर्ण और घृतादि इन सब दानों से वेदविद्या का दान अतिश्रेष्ठ है। (स. प्र.: तृतीय समुल्लास)

मनुष्य जैसे औरों से विद्या पावे वैसे ही देवे क्योंकि विद्या दान के समान कोई और धर्म बड़ा नहीं है। (ऋ.1.120.6)

34. दक्षिणा का अर्थः—दक्षिणा शब्द का अर्थ है **'दक्षन्ते दीयन्ते सुपात्रेभ्यस्ताः'** (यजु. 18.42 ऋषि दयानन्द भाष्य) अर्थात् 'जो सुपात्र, अच्छे विद्वानों को दी जाती है।'

यजमान तथा सभी उपस्थित महानुभावों का यह विशेष और अनिवार्य कर्तव्य है कि पूर्णाहुति के पश्चात् अपनी इच्छानुसार यज्ञशाला में उपस्थित संन्यासी, वानप्रस्थ, गृहस्थ ब्रह्मा, वैदिक पुरोहित तथा विद्वान् अतिथियों को दक्षिणा प्रदान करें।

(ऋग्वेद 6.64.1, 2.12.21, 2.169.40, 4.17.13), (यजुर्वेद 26.2, 20.70), (ऐतरेयब्राह्मण–6)

यह 'दक्षिणा' उनके चरणों में या दाहिने हाथ में बहुत आदर–सम्मान के साथ, दोनों हाथ जोड़कर 'नमस्ते' करके देनी चाहिये (ऋग्वेद 3.39.6, 6.64.1, 2.12.21, 2.69.40, 4.17.13), (यजुर्वेदः 26.2, 20.70), (ऐतरेयब्राह्मण–6)।

अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध यज्ञ पर्यन्त सभी यज्ञ तब सफल होते हैं जब 'दक्षिणा' दी जाती है। (अथर्ववेद 19.19.6)

अथर्ववेद और यजुर्वेद में कहा है कि 'जो यजमान घर में सिले वस्त्र तथा स्वर्ण (आभूषणादि) की दक्षिणा देता है वह सदा सत्य मार्ग पर चलता हुआ

सुखी और समृद्ध होता है (अथर्ववेद: 9.5.24 एवं यजुर्वेद: 7.45)। दान दाता कभी कृपण नहीं होता अर्थात् दान देने वाला कभी निर्धन नहीं होता। (यजु. 7.46)

विशेष: दान/दक्षिणा सुपात्र को ही देनी चाहिये तथा उस वस्तु की मात्रा नहीं अपितु स्तर देखना आवश्यक है। वस्तु की मात्रा कम हो पर उसका स्तर बढ़िया होना चाहिये।

35. दान-दक्षिणा प्रदान करने का सही समय:—दान कभी भी, कहीं भी, किसी सुपात्र को दिया जा सकता है। यज्ञकर्म की पूर्णाहुति (अन्तिम आहुति) के पश्चात् तथा ब्रह्मा/पुरोहित/विद्वान् अतिथि ब्राह्मणादि के आसन छोड़ने से पूर्व, यजमान तथा सभी उपस्थित याज्ञिकों (यज्ञ में भाग ले रहे अतिथिगण) को चाहिये कि वे बड़ी श्रद्धा और समर्पण भाव से दक्षिणा दें (मीमांसादर्शन) और दान-राशि सुपात्रों को प्रदान करनी चाहिये जैसे धार्मिक, शैक्षणिक, वृद्धाश्रम, अनाथालय इत्यादि संस्थाओं को देनी चाहिये। दान माँगा नहीं जाता अपितु अपनी श्रद्धा से दिया जाता है।

36. ब्रह्मा/पुरोहितों तथा याज्ञिकों का कर्तव्य:—यज्ञ के ब्रह्मा का कर्तव्य/काम है यज्ञकर्म की गतिविधियों का बारीकी से निरीक्षण करना, होने वाली त्रुटियों को सुधारना तथा मार्गदर्शन करना। यदि यज्ञ के दौरान त्रुटियाँ रह जाती हैं तो उसका उत्तरदायित्व ब्रह्मा पर होता है। देखा गया है कि ब्रह्मा/पुरोहितगण यज्ञकर्म कराने के बदले में अपने समय का मुआवज़ा 'धन' माँगते हैं जो एक अवैदिक परम्परा है।

याज्ञिक या यजमान (यज्ञ की सारी व्यवस्था कराने

वाला याज्ञिक या संस्था) का यह कर्तव्य है कि वह यथाशक्ति, इच्छानुसार, श्रद्धापूर्ण ब्रह्मा/पुरोहित/पण्डितगण को दक्षिणा प्रदान करने की व्यवस्था करे जिससे उन (ब्रह्मादि) का गृहस्थ जीवन का सुखपूर्वक निर्वाह हो सके।

यज्ञ का ब्रह्मा अनिवार्यरूप से एक गृहस्थ विद्वान् पुरोहित ही बन सकता है। वर्तमान में कुछ संस्थाएँ ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी को ब्रह्मा के लिये आमन्त्रित करती हैं और ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी भी उसे सहर्ष स्वीकार करते हैं। यह अवैदिक परम्परा है।

37. स्वर्ग और मोक्ष में अन्तरः—यज्ञकर्म करने से यजमान को स्वर्ग अर्थात् सांसारिक सुख-सुविधाओं की प्राप्ति होती है, मोक्ष की नहीं। मोक्ष की प्राप्ति होती है—वेदाध्ययन करके वेदोक्त आचरण से, मन, वचन और कर्म द्वारा सत्याचरण से, पातंजलि अष्टांग योग के अभ्यास से तथा निष्काम कर्मों के करने से और ईश्वर समर्पण से।

स्वर्ग कहते हैं—संसार में सब सुख-सुविधाओं के साथ जीवन जीने को, अनुकूल परिस्थितियों में जीने को, जिस घर में नित-प्रतिदिन सन्ध्योपासना होती हो, नियमितरूप से यज्ञ होता हो, घर में सुख-सम्पत्ति-समृद्धि हो, शान्ति हो, सुशिक्षित धर्मपत्नी और चरित्रवान पति हो, उनकी आज्ञाकारी सन्तानें हों, वैदिक संन्यासियों, विद्वानों, अतिथियों और मित्रों का आवागमन हो, सभी एक-दूसरे की बात मानते हों आदि जहाँ ऐसी परिस्थितियाँ हों, समझो वह घर स्वर्ग है अन्यथा विपरीत परिस्थितियों

को 'नरक' कहते हैं। सांसारिक सुख का सम्बन्ध भौतिक शरीर से होता है अतः सुख में कहीं न कहीं दुःख मिश्रित होता है और सुख का अन्त दुःख ही होता है अतः हमें मोक्ष की तीव्र इच्छा रखनी चाहिये।

मोक्ष अर्थात् सब प्रकार के दुःखों से छूट जाना। मोक्षावस्था में भौतिक शरीर नहीं होता अर्थात् आत्मा जन्म–मरण के अनादि चक्र से परान्तकाल (31,10,40,00,00,00,000 सांसारिक वर्ष अर्थात् 31 नील, 10 ख़रब और 40 अरब वर्ष जिसे गिनती करने में ही न जाने कितने जन्म बीत जाएँगे!) तक मुक्त रहता है और नितान्त सुख अर्थात् 'आनन्द' में आनन्दित रहता है जो केवल परमात्मा के सान्निध्य से ही प्राप्त होता है। ईश्वर आनन्दस्वरूप है अतः मोक्ष वह स्थिति है जहाँ मात्र 'आनन्द ही आनन्द' होता है।

हवन से वायु शुद्ध होकर सुवृष्टि होती है, उससे शरीर निरोग और बुद्धि विशद होती है, विद्या प्राप्त होती है और स्वर्ग अर्थात् सुख की प्राप्ति होती है। (उपदेशमंजरी)

38. यज्ञ और संन्यासीः—यज्ञकर्म में मुख्य भूमिका यजमान की होती है अतः उनको श्रद्धा, प्रेम और समर्पित भाव से यज्ञ करना चाहिये। अरुचि तथा अश्रद्धा से किया गया यज्ञ करने से मनोवांछित फल की प्राप्ति नहीं होती। मनु महाराज कहते हैं, 'दिखावे का यज्ञ करना व्यर्थ (फलरहित) होता है।' (मनुः 2.97)

सभी प्राचीन ऋषियों तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती (**संस्कार विधिः संन्यासाश्रम**) सहित और अनेक

विद्वानों का भी ऐसा मानना है कि संन्यासी सब प्रकार के यज्ञादि कर्मकाण्डों के करने से मुक्त है अर्थात् वह यज्ञादि कर्मकाण्ड न करे। आपात्कालीन परिस्थिति में—जिस स्थान पर कोई गृहस्थी पुरोहित उपलब्ध न हो और यज्ञकर्म कराना अत्यन्तावश्यक हो और वहाँ एक संन्यासी उपस्थित है, ऐसी परिस्थिति में यदि वह संन्यासी, उपस्थित यजमान एवं अतिथियों को यज्ञकर्म कराने में मार्गदर्शन प्रदान करे तो अच्छी बात है, परन्तु वह 'ब्रह्मा या 'पुरोहित' बन कर यज्ञ में भाग नहीं ले सकता। एक संन्यासी यज्ञकर्म की गतिविधियों की पूरी जानकारी प्रदान करे, इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है, वैदिक धर्म के किसी भी विषय की जानकारी प्रदान करना उसका कर्तव्य ही नहीं, धर्म भी है। संन्यासी का पूरा जीवन की यज्ञमय (निष्काम कर्म हेतु) होता है।

कुछ आधुनिक विद्वानों का ऐसा मानना है 'जैसे कि एक संन्यासी भी सामान्य लोगों के समान नित्यकर्म करता है इसलिये उसे भी यज्ञ करना चाहिये' और यही विचारधारा कुछ आधुनिक (ब्रह्मा बनने के इच्छुक) संन्यासियों की भी है। संन्यासी स्वयं यज्ञ करना चाहे कर ले, परन्तु वह ब्रह्मा/पुरोहित बनकर यज्ञ करावे यह वैदिक मान्यताओं के विपरीत है या ऐषणाओं का आकर्षण है...ऐसा अनेक विद्वानों का मत है।

महर्षि मनु महाराज लिखते हैं 'एक संन्यासी को अग्नि (यज्ञाग्नि) प्रज्वलित करने का उत्तरदायित्व नहीं है।'

वैदिक मान्यतानुसार संन्यासी को कर्मकाण्ड से

मुक्त किया गया है और यज्ञ एक प्रकार का कर्मकाण्ड ही है।

वैसे भी संन्यासाश्रम में प्रवेश करने से पूर्व उसका यज्ञोपवीत उतार लिया जाता है जो यह दर्शाता है कि भविष्य में वह संन्यासी सब प्रकार के कर्मकाण्डों से मुक्त है। यज्ञोपवीत से ही मनुष्य यज्ञकर्म करने का अधिकारी बनता है।

संन्यासी का मुख्य कर्तव्य है कि वह समाज के सभी वर्गों में नियमितरूप से वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार करता रहे तथा किसी भी प्रकार की राजनीति में न पड़े। एक सच्चा संन्यासी वैसे भी भौतिक सुख-सुविधाओं को त्याग कर ही संन्यासी बनता है। अतः वह धार्मिक क्षेत्र में ही अपना अमूल्य जीवन बिताने की प्रतिज्ञा लेता है। वह सांसारिक प्रपंचों से मुक्त हो जाता है। संक्षेप में एक संन्यासी तीनों ऐषणाओं से ऊपर होता है। एक संन्यासी को भौतिक नश्वर वस्तुओं में राग (आकर्षण) नहीं होता क्योंकि उसका बस एक ही लक्ष्य होता है मुक्ति प्राप्त करना, ईश्वर के सान्निध्य में रहकर आनन्द प्राप्त करना, उसके रंग में रंग जाना।

स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती अपने आत्मचरित्र में लिखते हैं—'संन्यासियों को सन्ध्या-अग्निहोत्र में सम्मिलित होते देख मुझे (मुंशीराम) सन्देह हुआ था। मैंने पण्डित गुरुदत्त जी से अपनी शंका प्रकट की। पण्डित गुरुदत्त जी ने कहा कि जो संन्यासी महात्मा, योगी हैं और सांसारिक वासनाओं से सर्वथा मुक्त, अल्पाहारी तथा उच्चकोटि के साधन-सम्पन्न हैं, उनके लिये इन बन्धनों से सर्वथा मुक्ति का विधान है, किन्तु जो संन्यासी

दिन-रात गृहस्थों की सेवा में लगे हुए सब प्रकार से भोजन-छादन में फँसे हुए हैं, उन्हें दो काल सन्ध्या तथा अग्निहोत्र करना ही उचित है।' (कल्याण मार्ग का पथिक)

संन्यासी का यज्ञ 'प्राणायाम' होता है। प्राणायाम से मन स्थिर होता है और स्थिर मन से ही ईश्वरोपासना सम्भव है।

शतपथब्राह्मण में लिखा है-ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु तथा उद्गाता पश्चिम (भौतिक संसार) की ओर चलते हैं परन्तु संन्यासी पूर्व (अभौतिक मोक्ष) की ओर चलता है अर्थात् संन्यासी का मार्ग दूसरों से भिन्न होता है। संसारी लोग भौतिक वस्तुओं की ओर भागते हैं परन्तु एक सच्चा संन्यासी पारलौकिक आनन्द की खोज में रहता है। यहाँ स्पष्ट है कि संन्यासी और अन्य लोगों के कर्तव्य/उद्देश्य भिन्न-भिन्न होते हैं।

हम पहले भी लिख आये हैं कि यज्ञ करने का अधिकार केवल उन लोगों को है जिन्होंने यज्ञोपवीत धारण किया है जैसे यज्ञ के ब्रह्मा, (निरीक्षक), होता (यजमान), अध्वर्यु (व्यवस्थापक), उद्गाता (संगीतमय मंत्रोच्चारण करने वाला) इत्यादि अन्यथा यज्ञ का विधान भंग होता है और उसका फल प्राप्त नहीं होता।

यज्ञ का ब्रह्मा बनने का अधिकार संन्यासी का नहीं अपितु एक गृहस्थी सुशिक्षित विद्वान् का होता है जिसने गुरुकुल में रहकर वैदिक पद्धति से धार्मिक शिक्षा का अध्ययन किया हो। संन्यासाश्रम में कोई भी व्यक्ति, कभी भी प्रवेश कर सकता है बशर्ते वह संसार के माया-मोह में उलझने से बचने और वैदिक

मार्ग पर चलने की प्रतिज्ञा का पालन करे।

कात्यायनसूत्र (1.2.4) में लिखा है '**सर्वेषां-यज्ञोपवीत्योदकाचमते नित्ये कर्मोपयाताम्**' अर्थात् यज्ञ के ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु और उद्‌गाता इत्यादि को अनिवार्यरूप से यज्ञ प्रारम्भ से पूर्व यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये और तीन 'आचमन' (जल के तीन बार घूँट पीने की क्रिया) करनी चाहिये। यह सब एक संन्यासी के लिये लागू नहीं हो सकते हैं।

'यज्ञ के ब्रह्मा के लिये यज्ञाग्नि में अपनी आहुति प्रदान करने का विधान है' (गोपथब्राह्मण) दूसरे अर्थों में 'एक संन्यासी को यज्ञाग्नि में अपनी आहुति देने का विधान नहीं है।' इससे भी यह प्रमाणित होता है कि कोई भी संन्यासी किसी भी यज्ञ का ब्रह्मा नहीं बन सकता।

यज्ञ कराने का अधिकार या विधान एक गृहस्थी पुरोहित का है अर्थात् एक गृहस्थी विद्वान् ही यज्ञ का ब्रह्मा या पुरोहित बन सकता है।

'यज्ञ कराने का अधिकार केवल एक गृहस्थी पुरोहित के लिये सुरक्षित है' (यह नियम सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के नियम क्रमांक० 12 के अनुसार है, **जिसे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने 1984-85 की वार्षिक साधारण सभा की बैठक में पारित किया है**)।

39. वैदिक पञ्च-महायज्ञ:—विद्वान् पाठकवृन्द इस बात का भी विशेष ध्यान रखें कि 'सत्य सनातन वैदिक धर्म' में मात्र पाँच-महा-यज्ञों का विधान है (मनुस्मृति: 3.70)। ऐसा प्रमाण अनेक आर्ष ग्रन्थों में

भी उपलब्ध है। सत्य सनातन वैदिक धर्म के पञ्चमहायज्ञ निम्नलिखित हैं–

1. ब्रह्म-यज्ञः अर्थात् वैदिक सन्ध्या, ध्यान और वैदिक (आर्ष) ग्रन्थों का स्वाध्याय (पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना और आत्म निरीक्षण) करना।

2. देव-यज्ञः अर्थात् यज्ञकर्म/अग्निहोत्र/हवन/होम इत्यादि परोपकारी कार्य करना।

3. पितृ-यज्ञः अर्थात् जीवित माता-पिता, आचार्य, गुरु, विद्वान् अतिथि तथा अपने बुजुर्गों की सेवा-शुश्रूषा (आदर-सत्कार एवं भरण-पोषण) करना और उनकी वेदोक्त आज्ञाओं का श्रद्धापूर्वक निष्काम भावना से पालन करना।

4. बलिवैश्वदेव-यज्ञः इसको भूत-यज्ञ भी कहते हैं जो सब गृहस्थी महिलाओं के लिये आवश्यक है। गृहिणियों को चाहिये कि वे अपने घर में पके (बिना नमक) भोजन में से दस आहुतियाँ निकालकर अपने घर की ही पाकशाला में प्रदान करें तथा भोजन का कुछ हिस्सा निकालकर भूखे व्यक्ति को खिलाएँ और भोजन का कुछ भाग पशु-पक्षी एवं अन्य जीव-जन्तुओं को पहुँचायें।

यह मात्र घर की पाकशाला में ही होना चाहिये। यदि घर में चूल्हा नहीं है (क्योंकि आजकल गैस पर ही भोजन पकता है) तो एक स्वच्छ ताम्बे के पात्र में अग्निहोत्र की समिधा जमाकर यज्ञाग्नि की अग्नि से प्रज्वलित कर उसमें बलिवैश्वदेव-यज्ञ के मन्त्रोचारण के साथ आहुतियाँ दी जा सकती हैं। जिस यज्ञकुण्ड में दैनिक अथवा साप्ताहिक यज्ञ होता है या आर्यसमाज

के यज्ञकुण्ड में बलिवैश्वदेव-यज्ञ की आहुतियाँ नहीं देनी चाहियें।

'बलिवैश्वदेव-यज्ञ' करने का प्रयोजन यह है कि पाकशालास्थ वायु का शुद्ध होना और जो अज्ञात अदृष्ट जीवों की हत्या होती है, उसका प्रत्युपकार कर देना।' (महर्षि दयानन्द सरस्वती)

बलिवैश्वदेव-यज्ञ की 16 आहुतियाँ होती हैं, उनमें से 10 आहुतियाँ चूल्हे से अग्नि अलग धर के उसमें बलिवैश्वदेव-यज्ञ किया जावे। शेष 6 भाग किसी दुःखी बुभुक्षित प्राणी अथवा कुत्ते आदि को दे देवें। (स. प्र.)

यहाँ कुत्ता, कौवा, चींटी आदि प्रतीक मात्र हैं, वास्तव में परमात्मा के बनाये समस्त प्राणी किसी न किसी रूप में मनुष्यों के लिये हितकारी होते हैं। अतः जहाँ तक हो सके उनकी रक्षा करना मनुष्य का कर्तव्य है और उनकी बिना कारण हिंसा करना पाप है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पञ्चमहायज्ञविषय में लिखते हैं-"कुत्तों, कंगालों, कुष्ठी आदि रोगियों, काक आदि पक्षियों और चींटी आदि कृमियों के लिये छः भाग अलग-अलग बाँट के दे देना और उनकी प्रसन्नता करना। अर्थात् सब प्राणियों को मनुष्य से सुख होना चाहिये।"

प्रायः लोग कुत्ते और गाय को रोटी इत्यादि खिलाकर बलिवैश्वदेव-यज्ञ की अन्तिम विधि को सम्पन्न करते हैं।

5. अतिथि-यज्ञः अर्थात् विद्वान् अतिथियों (अतिथि वह विद्वान् है जो वैदिक धर्म के प्रचार हेतु घूमते-घूमते

बिना सूचित किये अर्थात् जिसके पधारने की तिथि निश्चित नहीं होती, गृहस्थी परिवार में विश्राम के लिये पधारता है) की सेवा करना (ऋग्वेद: 10.117.6) अतिथि यज्ञ कहाता है।

उपर्युक्त को 'पञ्चमहायज्ञ' इसलिये कहते हैं क्योंकि उपर्युक्त पाँच यज्ञों को नित-प्रतिदिन करना सब मनुष्यों का कर्तव्य है।

पञ्चमहायज्ञों का लाभ 'आत्मोन्नति' (मनु. 2.18) अधिक जानकारी के लिये जिज्ञासु पाठकवृंद अथर्ववेद के 15वें काण्ड के, 10 से 14वें सूक्त के मन्त्रों का स्वाध्याय करें।

विशेष:—सर्वविदित है कि वर्तमान में भारत में ही नहीं, विदेशों में भी 'महायज्ञ' के नाम से अनेक यज्ञों का आयोजन पूर्ण श्रद्धा और प्रेम से किया जाता है। निश्चित रूप से यह एक शुभ संकेत है कि इस पृथ्वी पर रहने वाले अधिक से अधिक लोग वैदिक धर्म (मानव-धर्म) और वैदिक सिद्धान्तों की ओर आकर्षित होकर अपना रहे हैं। धार्मिक सज्जन अवश्य जान लें कि वैदिक मान्यतानुसार महायज्ञ पाँच ही होते हैं।

ध्यान रहे कि किसी भी विशेष संस्कारों, शुभावसरों या विशेष उत्सवों पर किसी भी प्रकार का ही क्यों न हो, यज्ञ/अग्निहोत्र या हवन का आयेजन, जो वैदिक मान्यताओं के विरुद्ध होते हैं उनको 'महायज्ञ' कहना अवैदिक है। उदाहरण के तौर पर 'गणपति महायज्ञ', 'वैष्णोदेवी महायज्ञ', 'विश्व-शान्ति महायज्ञ', 'सरस्वती महायज्ञ' इत्यादि।

इनके अतिरिक्त 'वेद पारायण महायज्ञ' या 'गायत्री

महायज्ञ' के नाम से यज्ञों का आयोजन करना भी एक ग़लत परम्परा और अवैदिक है। हाँ! यदि कामनापूर्ति हेतु हम कोई 'वेद पारायण यज्ञ' या 'गायत्री यज्ञ' करते हैं तो वे मात्र धार्मिक कर्मकाण्ड ही हो सकते हैं, 'महायज्ञ' नहीं क्योंकि महायज्ञ केवल पाँच ही होते हैं–जिनका वर्णन हम ऊपर कर आए हैं।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अतः उसको अन्य प्राणियों की अवश्य रूप से आवश्यकता पड़ती ही है अतः उसका भी यह कर्तव्य है कि वह उपर्युक्त पञ्च-महायज्ञ अवश्य करे।

यज्ञ सम्बन्धी शंका-समाधान

विशेष: यज्ञ के तीन प्रधान अंग हैं संकल्प, मन्त्र और आहुति। संकल्प के बिना यज्ञ नहीं हो सकता, मन्त्रोच्चारण बिना यज्ञ नहीं हो सकता और यज्ञाग्नि में आहुतियाँ प्रदान किये बिना भी यज्ञ (हवन/अग्निहोत्र) पूर्ण नहीं हो सकता। इन तीनों का समन्वित कार्य ही यज्ञ कहाता है।

शंका 1: यज्ञ में कितने यजमान होते हैं? हमने देखा है कि प्राय: सभी आर्यसमाजों में साप्ताहिक और विशेष उत्सवों के अवसर पर लोग यज्ञवेदी के चारों ओर तथा चारों रिक्त कोनों में भी यज्ञ करने बैठते हैं। इसके अतिरिक्त यज्ञ के ब्रह्मा की आज्ञा से चारों कोनों में बारी-बारी स्थान परिवर्तन करते हुए पाँच-पाँच आहुतियाँ प्रदान करते हैं। यह कहाँ तक सही है?

समाधान: किसी भी अवसर पर चाहे वह पारिवारिक सत्संग हो या साप्ताहिक या फिर वार्षिक उत्सव का हो अथवा अन्य किसी निमित्त से ही क्यों न किया गया हो इनमें होने वाले यज्ञ में केवल एक ही मुख्य यजमान सपत्नीक होता है और वही यज्ञ में आहुति देने का अधिकारी होता है, अनेक नहीं हो सकते! यजमान को ही यज्ञ का फल प्राप्त होता है। यज्ञ में भाग लेने वाले शेष लोगों को भी यज्ञ का लाभ (परिणाम और प्रभाव) अवश्य प्राप्त होता है परन्तु विशेष लाभ मुख्य यजमान (दम्पति) को ही प्राप्त होता है। यजमान का आसन यज्ञकुण्ड के पश्चिम (मुख पूर्व) में होता है

और उसकी धर्मपत्नी उसके दाहिनी ओर बैठती है। यजमान को 'याजक' और उसकी धर्मपत्नी को 'यज्वा' कहते हैं। वर्तमान में हम देखते हैं कि यज्ञकुण्ड के चारों ओर यज्ञप्रेमी दम्पति बैठते हैं वे अतिथि या दर्शक होते हैं, यजमान नहीं।

रही बात चारों कोनों में बैठे बारी-बारी से आहुतियाँ देने की, तो यह अवैदिक है। वैदिक विधान के अनुसार-

(1) पहले तो यज्ञवेदी के चारों कोनों में किसी को बैठना नहीं चाहिये क्योंकि किसी भी आर्ष ग्रन्थ में इस का उल्लेख नहीं है। यह ब्रह्मा की ग़लती है क्योंकि यज्ञ प्रक्रिया ब्रह्मा की देख-रेख में होती है और यदि उसमें कोई गड़बड़ी (त्रुटि) होती है तो उस का ज़िम्मेदार और कोई नहीं मात्र ब्रह्मा होता है।

(2) बार-बार स्थान परिवर्तन से यज्ञशाला में अशोभनीय दृश्य उत्पन्न होता है।

(3) पाँच मन्त्रों की समाप्ति पर कोनों में बैठने के लिये अनेक लोग हड़बड़ी से उठते हैं, इससे लोगों की आपस में तू-तू मैं-मैं भी हो जाती है, परिणामस्वरूप संगतिकरण की जगह आपस में वैर-द्वेष उत्पन्न हो जाता है।

(4) आर्यसमाजों में यज्ञ का समय निर्धारित होता है अतः जिन लोगों को आहुति देने का अवसर नहीं मिलता, वे लोग उस आर्यसमाज में दोबारा नहीं आते, अतः वर्तमान में आर्यसमाजों में रविवारीय सत्संगों में उपस्थिति कम होने का यह भी मुख्य कारण हो सकता है।

(5) पूर्णाहुति के समय भी उपस्थित सभी आगन्तुक लोगों को बारी-बारी से अपनी आहुति देने के लिये आमन्त्रित किया जाता है, (ब्रह्मा और पंडितों को दान-दक्षिणा देने के लिये) यह भी अवैदिक है क्योंकि पूर्णाहुति देने का अधिकार मात्र यजमान दम्पति को ही होता है, और किसी को नहीं।

इस शंका का समाधान करते हुए यज्ञ-विशेषज्ञ स्वामी मुनीश्वरानन्द सरस्वती (हापुड़) ने यजुर्वेद के एक मन्त्र का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए लिखा है (यज्ञप्रेमी स्वयं पढ़ें और दूसरों को भी अवश्य पढ़ाएँ, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा दिल्ली से निकलने वाला साप्ताहिक पत्र **'आर्य जगत्'** वर्ष 71, अंक 41 दि० 14 जनवरी 2007 में पृष्ठ 4 और 5 पर छपे स्वामी मुनीश्वरानन्द सरस्वती का लेख 'यज्ञ के विधि-विधान में एकरूपता स्थापित हो)–**"अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत"॥** (यजुर्वेदः अध्याय 15, मन्त्र 154) अर्थात् यज्ञशाला के इस उत्कृष्ट स्थल में यजमान और ऋत्विज् ही कर्म कराने के लिये बैठें, अन्य सब उपद्रष्टा आदि समस्त व्यक्ति यज्ञकुण्ड के बाहर बैठें। यजुर्वेद के इस प्रमाण के आधार पर यज्ञशाला–भजन, व्याख्यान, संगीत उपकरण बजाने, प्रवचन तथा जन-साधारण के बैठने तथा अन्य समस्त कार्यों को सम्पन्न करने का स्थल नहीं है। इन सब के लिये सभा मण्डप का उपयोग करना चाहिये, चाहे वे आर्यसमाजी हों अथवा कोई और हों। आप के द्वारा व्यक्त की गई शंका में लिखित यह समस्त प्रचलन आर्यसमाजियों और उनके ऋत्विजों की

अज्ञानलीलामात्र है, इसलिए इन सब आडम्बरों से रहित पवित्र यज्ञकर्म को शास्त्रविधि के अनुसार ही करना चाहिये।

यज्ञ की समाप्ति पर उपस्थित सभी व्यक्तियों से आहुति दिलवानी भी एक बहुत बड़ी भूल है, क्योंकि पूर्णाहुति केवल यजमान ही करेगा। यह इसलिये कि उसी का यज्ञ है, उसी के ऋत्विक् हैं, उसी की अग्नि है और उसी का हविद्रव्य है। न उपस्थित जनों का यज्ञ है, न उनके ऋत्विज् हैं, न उनकी अग्नि है, न उनके हविद्रव्य हैं, न वे प्रयत हैं, न यज्ञोपवीत धारण किए हुए हैं। ऐसी दशा में उनका आहुति देने का अधिकार नहीं बनता। आपका यह कृत्य तो विवाह-संस्कार की समाप्ति पर सभी बरातियों को एक-एक प्रदक्षिणा कराने जैसी ही विचित्रलीला है और है अर्थ-लिप्सा। इसलिये इस भूल को शीघ्रातिशीघ्र बन्द कर देना ही सर्वोत्तम है।

अथ च आपने अपनी इस शंका में समस्त दर्शकों द्वारा आहुति देने के कार्य के सम्बन्ध तो बहुत पीछे की बात पूछी है, यज्ञ के प्रारम्भ में ऋत्विग्वरण के पश्चात् जो ऋत्विजों का मधुपर्क द्वारा सम्मान करना है, वह तो आप लोगों ने यज्ञ की प्रक्रिया से बाहर निकाल कर गहरे गड्ढे में डाल दिया है। यथा–

कृतार्घ्या उवैनं याजयेयुः न बकृतार्घ्याः॥ (शांखायन गृह्यसूत्र 2.25.10) अर्थात् जिन का मधुपर्क किया गया है, ऐसे ऋत्विज् ही इस यजमान का यज्ञ सम्पन्न करावें और जिनका मधुपर्क नहीं किया गया है, वे न करावें। क्षिप्र होम अर्थात् नैमित्तिक, स्मार्त होम कर्म में

ऋत्विजों का मधुपर्क नहीं होता।

आपकी जानकारी हेतु दक्षिणा-सम्बन्धी चर्चा भी कर देता हूँ, जिसे पढ़कर समस्त आर्यसमाजी चौंकेंगे। एक सप्ताह या इससे न्यूनाधिक समय में सम्पन्न होने वाले वेद-पारायण आदि यज्ञों में जो पात्र और यजमान के यज्ञ के समय धारण किए गए वस्त्र हैं, यज्ञ की समाप्ति पर ये सब ब्रह्मा आदि ऋत्विजों को दक्षिणा में दे देने चाहिए तथा यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले कुशा के आसन, हवन कुण्ड की जलती अग्नि को समर्पित कर दिए जाते हैं। ऐसी अनेक विधियों के अभाव में, **विधिहीनं यज्ञं तामसम्**' अर्थात् विधिहीन यज्ञ तामसी यज्ञों की कोटि में आते हैं। तब आप जनों के ये विधिहीन यज्ञ तामसी कोटि में क्यों नहीं गिने जाएँगे!"

विशेषः यदि यज्ञकुण्ड चार कोण का न होकर अन्य shape या आकार का है तो उस परिस्थिति में कैसे बैठें, यह ब्रह्मा निर्धारित कर सकता है। चौकुने यज्ञकुण्ड के कोनों में बैठना अनुचित है। हाँ! यदि समाज या मन्दिर की ऐसी व्यवस्था है, या आपात्कालीन परिस्थिति में आहुतियाँ देने के लिये कोनों में बैठना पड़े तो इसमें आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

शंका 2: यज्ञकर्म के कौन से लाभ हैं और किस को प्राप्त होते हैं?

समाधानः किसी भी कर्म के फल को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं। **1. फल, 2. परिणाम और 3. प्रभाव।** किसी भी कर्म का फल केवल कर्त्ता को ही प्राप्त होता है अतः यज्ञकर्म का सम्पूर्ण फल केवल यजमान को ही मिलता है। शेष परिणाम

और प्रभाव सबको मिलता है।

यज्ञ के अनेक लाभ हैं जिनका विस्तार से वर्णन करना इस लघु पुस्तिका में बहुत कठिन है फिर भी हम यहाँ संक्षेप में यज्ञ के लाभ बताते हैं। यज्ञ का मुख्य लाभ है–**आसपास के वायुमण्डल को कुछ हद तक शुद्ध करना।** अन्य लाभ हैं–

1. यज्ञाग्नि में गोघृत तथा सामग्री (विभिन्न प्रकार के सुगन्धित पदार्थ तथा औषध गुणों से भरपूर जड़ी-बूटियों का मिश्रण) की आहुतियों से निकलने वाली सूक्ष्म गन्ध वायु को शुद्ध करती है और यह वायु देश-विदेश में जाकर सब प्राणधारी (जीवों) को स्वास्थ्य लाभ पहुँचाती है। यह सर्वश्रेष्ठ परोपकारी कार्य है क्योंकि इससे अपने हों या पराये, मित्र हों या शत्रु सबको लाभ पहुँचता है।

2. सब प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोग दूर होते हैं तथा आध्यात्मिक उन्नति होती है।

3. यज्ञाग्नि से उठने वाले धुएँ से पेड़-पौधों तथा वृक्षों को कार्बन-डाई-ऑक्साईड के रूप में भरपूर खुराक मिलती है जिसके फलस्वरूप वे हमें ऑक्सीजन प्रदान करते हैं।

4. यज्ञाग्नि में आहूत पदार्थ (घृत और सामग्री) सूक्ष्म होकर वायु द्वारा आकाश में बादलों में भेदन शक्ति उत्पन्न करके वर्षा करते हैं और वही पदार्थ वर्षा के जल द्वारा भूमि को प्राप्त होते हैं, जिससे फसल (उपज) अधिक और पौष्टिक होती है।

5. यज्ञ से यजमान तथा यज्ञ में भाग लेने वाले अतिथियों के मन में नकारात्मक विचार (Negative

Thoughts) समाप्त होते हैं तथा उनमें सकारात्मक विचार (Positive Thoughts) उत्पन्न होने लगते हैं।

6. दैनिक यज्ञ करने वालों के दिलों से भय का नाश होता है।

7. मन में सच्ची भावना रखकर यज्ञ करने तथा यज्ञ-मन्त्रों के अर्थ को समझकर वैसा ही अपने जीवन में आचरण करने से यजमान के सब कार्य पूर्ण होते हैं। परमेश्वर उसकी सभी योग्य मनोकामनाएँ अवश्य पूर्ण करता है।

8. दैनिक यज्ञ करने वाले समस्त परिवार की रक्षा होती है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। पाठकवृंद को भोपाल गैस काण्ड (मध्य प्रदेश) की उस भयानक रात्रि (2 दिसम्बर, सन् 1984) की दिल दहलाने वाली घटना अवश्य स्मरण होगी। आधी रात का समय, लोग निद्रा देवी की गोद में बेखबर सो रहे थे और अचानक भोपाल स्थित प्रसिद्ध अमेरीकी कम्पनी यूनियन कार्बाईड में एक बड़ा विस्फोट हुआ। इस दुर्घटना के कारण जहरीली गैस का रिसाव होने लगा जिसके परिणामस्वरूप उस पूरे क्षेत्र में अफ़रा-तफ़री मच गई। अधिकतर बच्चे-बूढ़े उस जहरीली गैस के प्रभाव वश सोते में ही परलोक सिधार गये तथा अनेक युवा लोग भी सँभल नहीं पाए और कुछ ही मिनटों में हजारों की संख्या में मृत्यु को प्राप्त हो गये। और जो बच गये वे सदा के लिय शारीरिक और मानसिक रोगी बन गये। उसी क्षेत्र में एक आर्यसमाजी परिवार रहता था (रहता है) जिसके घर में नियमित रूप से अग्निहोत्र होता है। घर जहरीली गैस से प्रभावित हो उससे पहले ही श्रीमती त्रिवेणी ने

समझबूझ से काम लिया, भागने की बजाय उन्होंने तुरन्त अग्निहोत्र प्रारम्भ कर दिया और 15 ही मिनटों में उनके घर का वायुमण्डल शुद्ध होने लगा, जिससे उसके सोए हुए पति और बच्चों की जान बच गई। ठीक इसी प्रकार वहीं के श्री एम. एल. राठौर ने भी परिवार के सभी सदस्यों–माँ, पत्नी और बच्चों को बिठाकर हवन प्रारम्भ किया जिसके परिणामस्वरूप सभी सदस्यों की जान बच गई। उपर्युक्त घटनाओं की जानकारी तत्कालीन समाचारपत्रों में भी प्रकाशित हुई थी।

आधुनिक विज्ञान भी इस बात की पुष्टि करता है कि वातावरण को शुद्ध करने/ रखने के लिये 'यज्ञ' से बेहतर और कोई साधन नहीं है। अतः यज्ञ ही एकमात्र ऐसा साधन है जिस से सब प्रकार से लाभ ही लाभ होता है, इसीलिये वेद में यज्ञकर्म को सर्वश्रेष्ठ कर्म की उपाधि प्रदान की गई है।

शंका 3: यज्ञकुण्ड के चारों रिक्त कोनों में बैठना चाहिये या नहीं?

समाधानः इस विषय में पूर्व लिख चुके हैं। यज्ञकुण्ड के चारों कोनों में बैठने का विधान किसी गृह्य या श्रौत्रसूत्र में नहीं है अतः यज्ञप्रेमी सज्जनों को यज्ञकुण्ड के चारों कोनों में नहीं बैठना चाहिये। चारों कोने वाले स्थानों को रिक्त रखना चाहिये तथा आहुति प्रदान करने का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता और अनुचित है। इससे यज्ञ व्यवस्था बिगड़ती है। स्मरण रहे कि यज्ञ में यजमान एक ही होता है जो सब अतिथियों/दर्शकों का प्रतिनिधित्व करता है। बार-बार स्थान परिवर्तन करने से यज्ञ में बाधा पड़ती है,

यजमान दम्पति का मन विचलित होने लगता है और स्थान परिवर्तन करते समय अतिथिगण पहले बैठने का प्रयास करते हैं जिससे आपसी ईर्ष्या-द्वेष उत्पन्न होने लगता है इसलिये इस अवैदिक परम्परा को तुरन्त बन्द कर देना चाहिये। वैसे भी मात्र आहुति प्रदान करने से अतिथियों को क्या प्राप्त होता है? हम नहीं जानते! अपने-अपने घरों में यज्ञ का आयोजन करें तो बहुत लाभ होगा ऐसी हमारी मान्यता है!

देश-काल-परिस्थिति के अनुसार यदि यज्ञ के ब्रह्मा/पुरोहित/ पदाधिकारी उपस्थित यज्ञप्रेमियों को प्रसन्न करने हेतु वेदी के चारों कोनों में बैठने की अनुमति देते हैं तो यह उन पर निर्भर करता है। वैसे यज्ञ वेदी के कानों पर बैठना अवैदिक है।

शंका 4: क्या दम्पति के अतिरिक्त, कोई अकेला व्यक्ति यजमान नहीं बन सकता है?

समाधान: यह कोई नियम या विधान नहीं है कि केवल पति-पत्नी ही यजमान बन सकते हैं। यजमान कोई भी बन सकता है स्त्री हो या पुरुष। सामाजिक संस्थाओं में यदि एक दम्पति (पति-पत्नी) यजमान बनता है तो बहुत अच्छी बात है। यदि केवल पति या पत्नी यजमान बनना चाहते हैं तो क्यों नहीं बन सकते हैं? अवश्य बन सकते हैं।

पहले तो हमें यह समझना होगा कि यजमान किसको कहते हैं? जो परोपकार की भावना से यज्ञ की पूरी व्यवस्था करता है अर्थात् उसका पूरा व्यय अपनी सात्विक नेक कमाई से करता है तथा श्रद्धा और प्रेम के साथ यज्ञ का पूरा आयोजन करता/करवाता है-उस

महानुभाव को 'यजमान' बनने का अधिकार है। जब कोई संस्था, मन्दिर या आर्यसमाज, दैनिक, साप्ताहिक, वार्षिक अथवा अन्य अवसरों पर यज्ञ का आयोजन करते हैं तो यज्ञ का लाभ उस संस्था के सभी दानी सदस्यों को प्राप्त होता है, उसमें चाहे मुख्य यजमान के रूप में कोई भी क्यों न बैठे! जो धर्म प्रेमी अपने घरों में नित-प्रतिदिन यज्ञ करते हैं वे सौभाग्यशाली होते हैं।

शंका 5: यज्ञ वेदी पर पुरुष और महिलाओं को किस स्थान पर कैसे बैठना चाहिये?

समाधान: बहुत अच्छी जिज्ञासा है। यजमान का आसन यजमान के लिये सुरक्षित होता है और उसके दाहिनी ओर उसकी धर्मपत्नी बैठती है और यदि यजमान (पुरुष या स्त्री) अकेला/ अकेली है तो उसके साथ में उसका भाई, मित्र या रिश्तेदार बैठ सकता है। स्मरण रहे कि पुरुष के दाहिनी ओर केवल उसकी धर्मपत्नी ही बैठ सकती है, अन्य कोई स्त्री (बहन, भाभी, माँ) नहीं। अन्य आसनों पर भी ऐसा ही समझना चाहिये। बहन, भाभी या अन्य को पुरुष के बाईं ओर ही बैठना उचित है, ऐसा आर्ष ग्रन्थों में वर्णित है। वैदिक संस्कारों में ऐसा ही विधान है।

'यज्ञो वा व पुरुषस्तस्येयं पत्नी दक्षिण।'

अर्थात् पुरुष यज्ञ है और उसकी पत्नी दक्षिणा है।

जो लोग आर्षग्रन्थों की व्यवस्था को जानते हुए भी नहीं मानते या हठीले स्वभाव के कारण उसके विपरीत करते हैं तथा अवैदिक रीति-रिवाजों को बढ़ावा देते हैं अतः वे पापकर्म के भागी होते हैं। यज्ञकर्म में जहाँ त्रुटि दिखाई दे, उसे वहीं ठीक करना चाहिये।

एक और बात का ध्यान रखना चाहिये कि यज्ञ कुण्ड के चारों कोनों में बैठकर आहुति प्रदान करने का कहीं विधान नहीं है अतः चारों कोनों का स्थान रिक्त रखना चाहिये।

जो बात सत्य (वेदोक्त) है उसको वैसा जानना, मानना और व्यवहार में लाना ही सही मायनों में सत्य कहाता है। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो स्वाध्याय नहीं करते और केवल 'अहम्' को प्रसन्न करने हेतु या दूसरों पर प्रभुत्व जमाने हेतु आर्ष ग्रन्थों की प्रामाणिक बातों को नहीं मानते और बेतुके तर्क और छल से अपनी बात को ही ठीक समझते हैं, ऐसे लोग स्वयं तो डूबते ही हैं दूसरों को भी अज्ञानता की गहरी खाई में धकेलते हैं। यह घोर अपराध है। यह अहंकार/अभिमान/स्वार्थ का प्रतीक है तथा लोकैषणा को दर्शाता है। यज्ञकर्म त्याग और परोपकार की भावना से किया जाता है, ईर्ष्या या दूसरों को नीचा दिखाने की भावना से नहीं।

शंका 6: क्या यज्ञ के मध्य में अतिथियों का स्वागत करना चाहिये?

समाधानः कदाचित् नहीं। ऐसा करना यज्ञरूप प्रभु का अपमान है। कोई भी व्यक्ति यज्ञरूप परमात्मा से बड़ा नहीं होता। यज्ञ के समय केवल यज्ञ में ही ध्यान देना चाहिये तथा मन में मात्र परमात्मा का ही ध्यान धरना चाहिये। यज्ञ प्रारम्भ होने के पूर्व या समापन के पश्चात् ही उस व्यक्ति विशेष का स्वागत कर सकते हैं। समय पर पधारने वाले अतिथियों का सम्मान अवश्य करना चाहिये। यज्ञ की विधि प्रारम्भ होने के

पश्चात् आने वाले व्यक्ति को भी योग्य है कि वह चुप-चाप आकर शान्ति से जहाँ रिक्त स्थान दिखाई दे वहाँ बैठ जाए। किसी को इशारे से भी नमस्ते न करे। हम जिस परोपकार की भावना से यज्ञ में शामिल हुए हैं, दत्तचित्त होकर अपना पूरा ध्यान उसी में लगाएँ। याद रहे कि मन एक समय में केवल एक ही काम करता है और वह अत्यन्त चंचल होने के कारण बहुत विचलित हो जाता है तथा उसे दोबारा नियन्त्रित करना कठिन होता है। हमें अपने अतिथियों से या सगे-सम्बन्धियों से मिलने के अनेक अवसर मिलते हैं, यज्ञ के बीच में उनको नमस्ते करना या मुसकराहट देना, इससे यह प्रतीत होता है कि आप यज्ञ वेदी पर मात्र दिखावे के लिये बैठे हैं कि आप बहुत धार्मिक हैं। इस प्रकार का पाखण्ड न करें तो इसमें आपकी ही भलाई है।

शंका 7: कृपया यज्ञ की और विस्तृत जानकारी दें तथा यह भी बताएँ कि 'बहुकुण्डीय यज्ञ' करने चाहियें या नहीं और क्यों?

समाधानः बहुत ही ज्ञानवर्धक शंका/प्रश्न है। सर्वप्रथम यज्ञ किसे कहते हैं, इसको अवश्य समझना चाहिये क्योंकि यज्ञ के अनेक अर्थ हैं जो इस पुस्तक के प्रारम्भ में लिख चुके हैं। यज्ञकुण्ड की अग्नि में मात्र आहुतियाँ देने का ही नाम यज्ञ नहीं है। प्रत्येक परोपकारी कार्य का यज्ञ कहते हैं—

1. सर्वविदित है कि अग्निहोत्र (यज्ञ) एक कर्मकाण्ड है जिसका प्रमुख लाभ है—**प्रदूषण की निवृत्ति और वातावरण की शुद्धि**, अतः स्वाभाविक है कि यज्ञ की शुरुआत अपने घर से ही करनी चाहिये।

2. किसी कारणवश यदि अपने घर में यज्ञ करने की सुविधा उपलब्ध नहीं है (जैसे पश्चिमी देशों में प्रायः घर लकड़ी से बने होते हैं) तो सामूहिक यज्ञ (जैसे आर्यसमाज) में भाग लेना चाहिये। प्रतिदिन सम्भव नहीं है तो साप्ताहिक यज्ञ में जाना चाहिये। स्मरण रहे कि यज्ञ का फल मात्र यजमान (यज्ञ करने वाले दम्पति) को ही प्राप्त होता है।

3. रही बात चर्चित बहुकुण्डीय यज्ञ की तो इसकी चर्चा हम आगे भी करेंगे। आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी सभी 47 पुस्तकों में कहीं भी बहुकुण्डीय यज्ञ का वर्णन नहीं किया है। चारों वेद तथा किसी भी आर्ष ग्रन्थ में बहुकुण्डीय यज्ञ का वर्णन उपलब्ध नहीं है।

आजकल देखा गया है कि आर्यसमाज के अतिरिक्त अन्य लोगों की यज्ञ के प्रति बहुत आस्था और श्रद्धा जागृत हो गई है और अधिक से अधिक लोग यज्ञ में भाग लेना चाहते हैं। ऐसे लोगों को यज्ञकर्म की पद्धति मालूम नहीं है अतः सामूहिक यज्ञ में सबके साथ मिलकर यज्ञ करने की इच्छा प्रकट करते हैं। महर्षि दयानन्द के अनुसार ऐसी परिस्थिति में यज्ञकुण्ड का परिमाण बढ़ाया जा सकता है।

वर्तमान में अनेक वैदिक विद्वानों का ऐसा मत है कि यदि अनेक लोग सामूहिक यज्ञ में यजमान बनना चाहते हैं तो अनेक यज्ञकुण्ड (बहुकुण्डीय) रखने में आपत्ति नहीं होनी चाहिये, इससे अनेक लोगों को वैदिक संस्कृति का ज्ञान दिया जा सकता है। हमने अनेक लोगों की बातें और तर्क सुने हैं। चलिये देखते

हैं कि वेद तथा हमारे आर्ष ग्रन्थों की बहुकुण्डीय यज्ञ के विषय में किस प्रकार की मान्यता है–

अथर्ववेद (1.7.6 से मन्त्र सं० 19 तक) में अनेक यज्ञों का वर्णन आया है और चारों वेदों के 20376 मन्त्रों में से एक भी ऐसा मन्त्र नहीं है जिससे बहुकुण्डीय यज्ञ करने का विधान प्रमाणित होता हो। वैदिक धर्म (मीमांसादर्शन के अनुसार) में पाँच प्रकार की अग्नियों का वर्णन आया है 1. **गार्हपत्य**, 2. **आहवनीय**, 3. **दक्षिण** (श्रौत अग्नियाँ), 4. **सभ्या** और 5. **वसथ्य**। श्रौतयज्ञ में पाँच अग्नियों के पाँच यज्ञकुण्ड होते हैं परन्तु इनमें भी मुख्य आहवनीय कुण्ड एक ही होता है जिसमें आहुतियाँ दी जाती हैं शेष चार कुण्ड यज्ञादि कर्मकाण्ड पूर्ण करने के लिये होते हैं। लोगों ने इसे बहुकुण्डीय यज्ञ समझ लिया है जो अवैदिक, अवैज्ञानिक, अशास्त्रीय तथा एक प्रकार का पाखण्ड है जो मात्र स्वार्थपूर्ति का एक ज़रिया है। बहुकुण्डीय यज्ञों का समर्थन करना अशिक्षा, अस्वाध्याय तथा ऐषणाओं में लिप्तता का परिणाम है। इस विषय पर समय-समय पर अनेक वैदिक विद्वानों ने इस कुप्रथा का निर्मूलन करने के लिये अपनी कलम चलाई है, अनेकानेक लेख प्रकाशित हो चुके हैं और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की धर्मार्य सभा ने इस सन्दर्भ में प्रेस विज्ञप्तियाँ प्रकाशित की हैं परन्तु यह किसे मालूम था कि पौराणिकों के संस्कार वैदिकधर्मियों में भी घर करेंगे!

पाठकवृंद से निवेदन है कि बहुकुण्डीय यज्ञ के विषय की अधिक जानकारी हेतु वे 'आर्यसमाज सान्ताक्रुजः मुम्बई की मासिक पत्रिका **'निष्काम**

परिवर्तन' फ़रवरी और मई 2002 में प्रकाशित डॉ० रामकृष्ण आर्य कोटा (राज०) के लेखों को अवश्य पढ़ें।

रही बात विशेष यज्ञों तथा बहुकुण्डीय यज्ञों की, तो उस का दोषी एकमात्र यज्ञ का ब्रह्मा होता है क्योंकि यह कार्य ब्रह्मा के क्षेत्र में आता है कि यज्ञ में किसी भी प्रकार की त्रुटि न हो। ब्रह्मा एक गृहस्थी वैदिक विद्वान् होता है और यदि यज्ञ में किसी भी प्रकार की त्रुटि रह जाती है तो उसका ज़िम्मेदार ब्रह्मा ही होता है, यजमान नहीं। यजमान का कर्तव्य है कि वह यज्ञ के ब्रह्मा के आदेशों का पालन करे और यदि यजमान ग़लतियों को जानते हुए भी चुप रहता है तो यज्ञ का जो लाभ प्राप्त होना है, वह उससे वंचित रहता है। पाठकवृंद निम्नलिखित बातों को विशेष ध्यान से पढ़ें:—

सर्व विदित है कि ई० सन् 1975 में 'आर्यसमाज शताब्दी समारोह' दिल्ली में मनाया गया था। जिस में हज़ारों की संख्या में धर्मप्रेमियों ने वैदिक सिद्धान्तानुसार एक विशाल यज्ञकुण्ड में यज्ञ किया और आहुतियाँ प्रदान कीं। यह आर्यसमाज का ऐतिहासिक यज्ञ था।

सार्वदेशिक धर्मार्य सभा ने 21/03/1982 में एक प्रस्ताव पारित कर अपनी विज्ञप्ति में बहुकुण्डीय यज्ञ को अवैदिक अशास्त्रीय, अवैज्ञानिक और महर्षि दयानन्द सरस्वती की यज्ञ पद्धति के विरुद्ध घोषित किया है तथा इसे एक ढोंग और पाखण्ड माना है।

ईसवी 1983 में अजमेर में 'ऋषि दयानन्द बलिदान शताब्दी समारोह' मनाया गया था और उस ऐतिहासिक समारोह में भी वैदिक धर्मानुसार एक ही

यज्ञकुण्ड में यज्ञ का आयोजन किया गया था जिसमें हज़ारों की संख्या में लोगों ने भाग लिया और आहुतियाँ प्रदान की थीं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के कथनानुसार यज्ञ एक विज्ञान सिद्ध होता है और विज्ञान के साथ किसी भी देश, काल परिस्थिति अथवा संख्या का सम्बन्ध जोड़ा नहीं जा सकता।

मीमांसादर्शन के 10.6.46, 10.6.52, 10.6.56, 10.7.59, 6.3.22, 10.6.69 सूत्रों के भाष्य से एक ही निष्कर्ष निकलता है कि सोमयज्ञों के अन्तर्गत बारह दिवसीय सत्र से वर्षों तक चलने सत्र यागों में एक यजमान और सोलह ऋत्विज् होते हैं और सभी यजमान कहाते हैं क्योंकि ये सत्र याग दक्षिणा रहित होते हैं। इन यजमानों के लिये अलग-अलग यज्ञकुण्ड नहीं होते। यजमानों की संख्या कितनी भी क्यों न हो जाए, यज्ञकुण्ड तो पाँच ही होंगे और उनमें से आहुतियाँ मुख्यतया आहवानीय कुण्ड में ही दी जाती हैं।

(**साभारः** स्व० पं. युधिष्ठिर मीमांसक कृत 'अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त श्रौतयज्ञों का संक्षिप्त परिचय')

इससे यह भी प्रमाणित होता है कि जिस यज्ञ में दक्षिणा दी जाती है वहाँ एक ही यजमान होता है, अनेक नहीं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के किसी भी ग्रन्थ में बहुकुण्डीय यज्ञ करने का विधान नहीं है, इससे सटीक प्रमाण और क्या हो सकता है? बहुत दुःख की बात है कि आजकल कुछ आर्यसमाजों में भी बहुकुण्डीय

यज्ञ की कुप्रथा प्रारम्भ हो गई है और यज्ञ के ब्रह्मा; यज्ञ निरीक्षक एवं उच्चकोटि के दार्शनिक विद्वान् पुरोहित जानते हुए भी इसका विरोध नहीं करते। क्यों? इसका उत्तर सब जानते हैं। स्वयं को ब्राह्मण कहाने वाले तथा वैदिक विद्वानों से विनम्र निवेदन है कि वे अपने हठ, दुराग्रह और ऐषणाओं को त्याग कर बहुकुण्डीय यज्ञों का प्रचार और प्रसार न करें और न ही बढ़ावा दें। यदि फिर भी वे बहुकुण्डीय यज्ञों का समर्थन करते हैं तो आर्यसमाज के नाम का मज़ाक न उड़ाएँ।

शंका 8: बहुकुण्डीय यज्ञ वैदिक हैं या अवैदिक? यदि अवैदिक है तो सबको यज्ञ में आमन्त्रित क्यों करते हैं? यज्ञ का यजमान एक होता है तो कार्यक्रमों में जनसाधारण को यजमान बनने के लिये क्यों बार-बार अपील करते हैं? यदि एक सौ या एक हज़ार यजमान बनने को राज़ी हैं तो यज्ञकुण्डों की संख्या बढ़ाने में क्या आपत्ति है? इससे यज्ञ के प्रति आस्था बनती है तो यह अवैदिक और अवैज्ञानिक कार्य कैसे हो सकता है? अपनी बुद्धि और तर्क पूर्वक निर्णय करें तो बहुकुण्डीय यज्ञ करने में सबको लाभ ही पहुँचता है हानि नहीं तो बहुकुण्डीय यज्ञ को अवैदिक करार देना कहाँ का धर्म है? यज्ञकुण्ड अनेक होंगे तो वातावरण अधिक शुद्ध-पवित्र होगा तो इसमें अवैदिकता और अवैज्ञानिकता कैसे? कृपया स्पष्ट करने का कष्ट करें!

समाधानः उपर्युक्त सब शंकाएँ तर्कपूर्ण और अच्छी हैं। इस के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने समय-समय

पर अनी कलम भी चलाई है जिसका आज तक कोई परिणाम नज़र नहीं आया है।

इसका एक मात्र कारण वित्तैषणा (धन-प्रलोभन) है। कहते हैं कि सत्य सबको कड़वा लगता है परन्तु उसका फल मीठा होता है।

1. यज्ञ सर्वश्रेष्ठ कर्म है अतः आर्यसमाज के कार्यक्रमों में सबको सर्वश्रेष्ठ कर्म करने की प्रेरणा दी जानी चाहिये और सब को आमन्त्रित करना चाहिये।

2. किसी विशेष अवसर पर यज्ञ के मुख्य यजमानों की संख्या बहुत अधिक है और सब यजमान बनना चाहते हो तो ऐसी परिस्थिति में बहु-कुण्डीय यज्ञ का आयोजन करने-कराने में कोई हानि नहीं है बशर्ते यज्ञकर्म में कोई त्रुटि न हो परन्तु ऐसा सम्भव नहीं हो सकता क्योंकि ब्रह्मा एक और यजमान अनेक। एक ब्रह्मा सर्वव्यापक नहीं हो सकता जो सब ओर ध्यान दे पावे। अतः यज्ञ में ग़लती होने से लाभ के स्थान पर हानि ही होती है।

3. यहाँ विशेष बात का ध्यान रखना होगा कि यज्ञ के ब्रह्मा को पूरा उत्तरदायित्व निभाना पड़ेगा कि यज्ञकर्म में किसी भी यजमान से यज्ञ के अन्तर्गत कोई त्रुटि न हो और यह एक ब्रह्मा के लिये सम्भव नहीं है।

4. यदि सभी यजमानों को यज्ञ करना आता है तो यज्ञ में त्रुटियाँ नहीं होंगी तो अच्छी बात है अन्य परिस्थिति में नये यजमानों द्वारा यज्ञ में होने वाली अनेक ग़लतियों का पाप ब्रह्मा पर ही होगा।

5. जो ठीक नहीं है अतः बहुकुण्डीय यज्ञ जितना हो सके, उनको बढ़ावा नहीं देना चाहिये।

देश-काल-परिस्थिति को ध्यान में रखकर यदि बहुकुण्डीय यज्ञों का आयोजन करना पड़े तो सब कुण्डों के पास सुशिक्षित यज्ञ मार्गदर्शक उपस्थित होने चाहियें, जो समय-समय पर नये आमन्त्रित यजमानों को ठीक तरह से यज्ञ की विधियाँ समझा सकें, जिससे नये यजमानों की यज्ञ के प्रति आस्था बनी रहे और यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हो सके परन्तु सर्वविदित प्रत्यक्ष प्रमाण है कि ऐसा होना सम्भव नहीं है। मैंने ऐसे अनेक यज्ञों में भाग लिया है और खेद के साथ लिखना/कहना पड़ता है कि इस प्रकार के बहुकुण्डीय यज्ञों में अनेक बार धुआँ होता है, सब यज्ञकुण्डों पर घी तथा सामग्री की व्यवस्था में विलम्ब होता है और यज्ञ प्रक्रिया को अनेक बार कुछ समय के लिये रोका भी जाता है। समापन के समय इतना होने के बाद भी घोषणा की जाती है कि 'ईश्वर की असीम कृपा से यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हुआ।' यज्ञ के ब्रह्मा के द्वारा यह सरासर अधर्म है।

कुछ आधुनिक वैदिक विद्वानों का मत है कि 'ऋषियों के संदेशानुसार-प्रत्येक व्यक्ति को अपना-अपना यज्ञ करना चाहिये। आर्यसमाज अथवा सामूहिक व्यवस्था में साथ मिलकर एक कुण्ड में यज्ञ करें परन्तु वहाँ भी यज्ञ का एक प्रतिनिधि (एक यजमान या दम्पति स्त्री-पुरुष) होना चाहिये। सर्वविदित है कि हिन्दू समाज में बहुकुण्डीय यज्ञ का प्रचलन है क्योंकि वहाँ श्रद्धालु भक्त लोग अधिक संख्या में होते हैं और सभी यजमान बनना चाहते हैं। ऐसा हिन्दू समाज (पौराणिक वर्ग) में होता है परन्तु वैदिकधर्मियों में इसका निषेध

है। मनुष्य को चाहिये कि वह निजी अहंकार को त्यागकर, समाज, राष्ट्र और मानवता के हित में यज्ञकर्म करे इसी में सबका कल्याण है।

यज्ञ करना सर्वश्रेष्ठ कर्म और धर्म है परन्तु जिस बात की चर्चा (बहुकुण्डीय यज्ञों की चर्चा) यदि हमारे आर्ष ग्रन्थों में नहीं है तो हमें उस वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहिये। जिन लोगों को बहुकुण्डीय यज्ञ करना अच्छा लगता है, क्योंकि उससे उनकी प्रसिद्धि होती है तथा ब्रह्मा को भी अधिक मात्रा में दान-दक्षिणा मिलती है तो कोई क्या कर सकता है! आजकल लोगों का झुकाव धर्म से अधिक धन की ओर बढ़ रहा है क्योंकि उन्हें लक्ष्य नहीं लक्ष्मी चाहिये। अपनी-अपनी समझ है। वैदिक धर्म में बहुकुण्डीय यज्ञ नहीं होता और जहाँ होता है वहाँ अवैदिक एवं ग़लत ढंग से होता है।

और भी अनेक कारण हो सकते हैं जिनको ध्यान में रखते हुए हमारे ऋषियों ने कहीं भी बहुकुण्डीय यज्ञों का विधान नहीं बताया है। अतः बहुकुण्डीय यज्ञों का निषेध करना चाहिये। सर्वविदित है कि जहाँ-जहाँ बहुकुण्डीय यज्ञ होते हैं वहाँ-वहाँ हमेशा गड़बड़ी होती है। यज्ञ के बीच में कभी किसी यज्ञकुण्ड में से अधिक धुआँ उठता है तो यज्ञ के ब्रह्मा को यज्ञ के मन्त्रों का पाठ रोक कर बीच में टोकना पड़ता है (उस कुण्ड में घी अधिक डालिये और सामग्री की मात्रा कम कीजिये इत्यादि), जिससे यज्ञ में बाधा होती है। ऐसा भी देखा गया है कि किसी यजमान के पास यज्ञकुण्ड में डालने के लिये सामग्री, घी या समिधाओं की कमी हो जाती है और वे वहाँ घूम रहे सेवकों को

बुलाते हैं या उनकी पूर्ति के लिये समय लग जाता है तो यजमान नाराज़ हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य यही है कि यजमानों का पूरा ध्यान यज्ञ में न होकर यहाँ-वहाँ भटक जाता है।

ऐसे अवसरों पर एक और बात देखी जाती है कि यज्ञकर्म को रोक कर, ब्रह्माजी कुछ मन्त्रों की व्याख्या करने लगते हैं (ये वे मन्त्र हैं जिनकी व्याख्या की तैयारी वे पहले से ही घर से करके आते हैं)। वैसे देखा जाए तो मन्त्र-व्याख्या करने का कार्य ब्रह्मा का नहीं होता। ब्रह्मा का मुख्य कार्य (धर्म) है यज्ञकर्म में कोई गलती या अवैदिक कार्य न हो जावे, उस का निरीक्षण करना और त्रुटि होने पर उसे तुरन्त ठीक करना।

सत्य के साथ कभी समझौता नहीं करना चाहिये। बहुकुण्डीय यज्ञ हर दृष्टिकोण से अवैदिक एवं अवैज्ञानिक है अतः उसका बहिष्कार अवश्य करना चाहिये। अन्तिम निर्णय आप पाठकवृंद पर छोड़ते हैं।

शंका 9: क्या एक संन्यासी यज्ञ का ब्रह्मा बन सकता है?

समाधानः यदि किसी व्यक्ति, दम्पति को या अनेक लोगों

को यज्ञ करने की तीव्र इच्छा हो और वे लोग स्वयं अपने घर में भी यज्ञ कर सकते हैं और यदि उन्हें यज्ञकर्म करना नहीं आता या ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं कि उन्हें किसी पण्डित, ब्राह्मण या वैदिक पुरोहित के द्वारा ही यज्ञ करवाना है और वे उपलब्ध नहीं हैं और केवल एक संन्यासी उपलब्ध है तो ऐसी परिस्थिति में उस संन्यासी का कर्तव्य और धर्म बनता

है कि वह यज्ञ कर्म का विधान बताए और मात्र मार्गदर्शक या द्रष्टा के रूप में उपस्थित होकर यज्ञ को सम्पन्न कराए।

यदि यजमानों को मन्त्र पाठ करना नहीं आता है तो ऐसी आपात्काल स्थिति में, वह संन्यासी यज्ञ में पुरोहित बनकर यज्ञ सम्पन्न करावे, इसमें कोई आपत्ति वाली बात दिखाई नहीं देती है परन्तु वैदिक यज्ञाचार संहिता से वह अवैदिक ही कहा जाएगा।

आर्यसमाज के नियमानुसार यज्ञकर्म की परिधि ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ तक ही सीमित है अर्थात् संन्यासाश्रम में नहीं। गृहस्थी ब्राह्मण अर्थात् जो वैदिक विद्वान् गृहस्थ में रहता है, वही सभी वैदिक सस्कारों को (पुरोहित के कार्यों को) करा सकता है। ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ स्वयं यज्ञ कर सकते हैं परन्तु दूसरों के यहाँ पुरोहित बनकर नहीं करा सकते। दूसरी ओर एक संन्यासी न स्वयं यज्ञ कर सकता है और न ही दूसरों के लिये यज्ञकर्म करा सकता है। केवल गृहस्थी पुरोहित ही दूसरों के लिये यज्ञकर्म करा सकता है।

उपर्युक्त नियम सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा 1984-85 की वार्षिक बैठक में पारित किया गया है और धर्मार्य सभा के नियम क्रमांक 12 में लिखा है।

इससे स्पष्ट है कि गृहस्थी वैदिक विद्वान् को ही यज्ञ करने-कराने का अधिकार है, अन्य को नहीं। अपने-अपने घरों में सब लोग स्वेच्छा से कभी भी कहीं भी यज्ञ कर सकते हैं। पाठकवृंद सदा याद रखें कि संन्यासाश्रम को उच्चकोटि का आश्रम माना जाता है

क्योंकि स्वर्ग की कामना करने वाले लोग शेष तीन आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ) में रहते हैं अत: कहते हैं कि स्वर्ग की कामना करने वाले लोग यज्ञ किया करें।

वैदिक धर्म में संन्यासी को यज्ञ अर्थात् कर्मकाण्ड न करने की पूरी छूट प्राप्त है क्योंकि यज्ञ भी एक प्रकार का कर्मकाण्ड ही है और वैसे भी संन्यासाश्रम में प्रवेश करने से पूर्व, संन्यासाश्रम की दीक्षा ग्रहण करते समय, उनका धारण किया हुआ यज्ञोपवीत उतार दिया जाता है अर्थात् इसके बाद वह संन्यासी भविष्य में यज्ञकर्म करने से पूर्णरूपेण मुक्त है। दूसरे अर्थों में यज्ञ करने का अधिकार मात्र यज्ञोपवीत धारण करने वाले को ही है अन्य को नहीं क्योंकि यज्ञकर्म करने वाले महानुभाव को यज्ञोपवीत धारण करना अनिवार्य होता है।

एक सच्चे संन्यासी का यह विशेष और आवश्यक कर्तव्य है कि वह प्रतिदिन प्राणायाम करे। एक स्थान पर न रुके अपितु सब स्थान जाकर समाज के अन्य वर्गों तथा वर्णों के लोगों में वेद-ज्ञान का प्रचार-प्रसार करता रहे। समाज की राजनीति में न पड़े। एक सच्चा संन्यासी संसार की सुख-सुविधाओं को स्वेच्छा से त्याग कर अपनी आत्मोन्नति के मार्ग पर चलकर आध्यात्मिक क्षेत्र में पहुँच चुका होता है। उसका ध्येय है—आत्म निरीक्षण करना, परमात्मा का साक्षात्कार (आनन्द की अनुभूति) करना। वह ऐसी स्थिति में पहुँच चुका है कि उसे सांसारिक वस्तुओं से कोई लगाव या उसकी इच्छा नहीं होती। अब वह मुक्ति के मार्ग का राही है। यह सब सोच-समझ कर ही वह संन्यासाश्रम को ग्रहण करता है।

जितने भी यज्ञ किये जाते हैं उनसे सांसारिक कामनाएँ पूर्ण होती हैं, स्वर्ग (सुख-साधन-समृद्धि एवं स्वास्थ्य) की कामना करने वाले यज्ञ करते हैं।

शंका 10: यज्ञ के और क्या लाभ हैं?

समाधान: इसी शंका का समाधान हम संक्षिप्त में ऊपर कर आए हैं। वही प्रश्न फिर से पूछा गया है अत: यज्ञ के और लाभ लिखते हैं—

कामना/इच्छा/स्वार्थ या मतलब के बिना कोई कर्म नहीं करता। लाभ/हानि को ध्यान में रखकर ही मनुष्य कर्म करता है। वेदों में यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म कहा है—इसलिये अधिक से अधिक लोग अपने घरों में यज्ञकर्म करने का प्रयास करते हैं।

नोट: संस्थाओं या समाजों में यज्ञ सार्वजनिक होने से उसका फल संस्था या समाज को ही प्राप्त होता है अर्थात् समाज के सभी दानदाताओं को मिलता है क्योंकि कोई भी संस्था या समाज दानदाताओं के दान से ही चलती है, किसी व्यक्ति विशेष से नहीं। उत्सवों के अवसर पर ऐसा ही समझना चाहिये।

कर्म का फल तीन प्रकार से प्राप्त होता है—1. फल, 2. परिणाम और 3. प्रभाव। यज्ञ एक प्रकार का विज्ञान है और विज्ञान सबके उपकार या लाभ के लिये होता है। कर्म का फल सदैव कर्ता को ही प्राप्त होता है और जैसे कि यज्ञ का कर्ता यजमान होता है अत: यज्ञ का फल यजमान को ही प्राप्त होता है। यज्ञ का परिणाम है वायुमण्डल को शुद्ध पवित्र करना। यज्ञ का प्रभाव सब जीवों पर पड़ता है और मुख्यत: यज्ञ में भाग ले रहे सभी अतिथियों पर अवश्य रूप से पड़ता है

और उसका लाभ पहुँचता है। यज्ञ से आत्मोन्नति होती है, सबके प्रति प्रेम और श्रद्धा उत्पन्न होती है, मन में शान्ति का वास होता है, बिगड़े काम सँवर जाते हैं तथा उलझे काम सुलझ जाते हैं, घर में सुख-समृद्धि-शान्ति आती है तथा स्वास्थ्य लाभ होता है, अर्थात् यज्ञ से सबका, सब प्रकार से भला ही भला होता है। जिससे हम या हमसे जो जाने-अनजाने में अहित या द्वेष करता है यज्ञ से उसका भी कल्याण होता है। यज्ञ एक प्रकार का विज्ञान (विशेष-ज्ञान) है, जिसके अनेक लाभ होते हैं और हानि किंचित् मात्र भी नहीं होती अतः यज्ञ करना सर्वश्रेष्ठ कार्य है जो सब मनुष्यों को करना चाहिये।

'आयुर्दा असि आयुर्मे देहि।' (यजुर्वेदः 3.17)

अर्थात् यज्ञ आयु प्रदान करता है।

यज्ञ के और भी अनेक लाभ हैं जिन का विस्तार से वर्णन करना इस लघु पुस्तिका में बहुत कठिन है। फिर भी हम यहाँ संक्षेप में यज्ञ के कुछ और लाभ बताते हैं। **यज्ञ का मुख्य लाभ है—आसपास के वायुमण्डल को कुछ हद तक शुद्ध करना।** अन्य लाभ हैं: (1) यज्ञाग्नि में गोघृत तथा सामग्री (विभिन्न प्रकार के सुगन्धित पदार्थ तथा औषधि गुणों से भरपूर जड़ी-बूटियों का मिश्रण) की आहुतियों से निकलने वाली सूक्ष्म गन्ध वायु को शुद्ध करती है और यह वायु देश-विदेश में जाकर सब प्राणधारी (जीवों) को स्वास्थ्य लाभ पहुँचाती है। यह सर्वश्रेष्ठ परोपकारी कार्य है क्योंकि इससे अपने हों या पराये, मित्र हों या शत्रु सबको लाभ पहुँचता है। (2) सब प्रकार के शारीरिक और मानसिक

रोग दूर होते हैं तथा आध्यात्मिक उन्नति होती है। (3) यज्ञाग्नि से उठने वाले धुएँ से पेड़-पौधों तथा वृक्षों को कार्बन-डाइ-ऑक्साईड के रूप में भरपूर खुराक मिलती है जिसके फलस्वरूप वे हमें ऑक्सीजन प्रदान करते हैं। (4) यज्ञाग्नि में आहूत पदार्थ (घृत और सामग्री) सूक्ष्म होकर वायु द्वारा आकाश में बादलों में भेदन शक्ति उत्पन्न करके वर्षा करते हैं और वही पदार्थ वर्षा के जल द्वारा भूमि को प्राप्त होते हैं, जिससे फसल (उपज) अधिक और पौष्टिक होती है। (5) यज्ञ से यजमान तथा यज्ञ में भाग लेने वाले अतिथियों के मन में नकारात्मक विचार (Negative Thoughts) समाप्त होते हैं तथा उनमें सकारात्मक विचार (Positive Thoughts) उत्पन्न होने लगते हैं। (6) दैनिक यज्ञ करने वालों के हृदय से भय का नाश होता है। (7) मन में सच्ची भावना रखकर यज्ञ करने तथा यज्ञ-मन्त्रों के अर्थ को समझकर वैसा ही अपने जीवन में आचरण करने से यजमान के सब कार्य पूर्ण होते हैं, उसकी सभी योग्य मनोकामनाएँ परमेश्वर अवश्य पूर्ण करता है।

स्वभाव से मनुष्य दो प्रकार के होते हैं- एक आन्तरिक वृत्ति (Intro-ward or Reserved) के लोग जो बहुत कम बोलते हैं अर्थात् अपने अन्दर ही डूबे रहते हैं, ऐसे लोग दूसरों से अधिक ज्ञानवान होते हैं और दूसरे प्रकार के लोग बहिर्मुखी वृत्ति (Outward) के होते हैं, ऐसे कर्मशील होते हैं और बाहरी दुनियाँ में ही प्रसन्न रहते हैं। जीवन में सफलता की दृष्टि से दोनों प्रकार की प्रवृत्ति के लोग अधूरे होते हैं क्योंकि मनुष्य के लिये मात्र ज्ञानवान होना पर्याप्त नहीं होता

और केवल कर्मशील होने से भी किसी के सब कार्य सिद्ध नहीं होते। अतः दोनों के मध्य का मार्ग अपनाना उचित होता है और उसी में ही समझदारी है। अतः सबको योग्य है कि जिस ज्ञान को प्राप्त करें उसे क्रियात्मक रूप प्रदान करें अर्थात् प्राप्त किये गये ज्ञान को हम अपने जीवन में उतारने का प्रयास करें। जब हम ज्ञान के साथ कर्म को जोड़ेंगे तो ही हमें कर्म करने का भरपूर फल प्राप्त होता है जिससे हमारी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। परम पिता परमात्मा हमारी पवित्र भावनाओं के साथ-साथ हमारे कर्म को भी देखता है और ज्ञानपूर्वक किया हुआ कर्म हमेशा रंग लाता है।

वैसे तो हम एक साथ में सभी देवताओं को प्रसन्न नहीं कर सकते परन्तु 'यज्ञ' ही एकमात्र ऐसा श्रेष्ठतम साधन है जिसके द्वारा सभी देवताओं को प्रसन्न कर सकते हैं तथा यज्ञाग्नि में हम जो-जो प्राकृतिक वस्तुएँ आहूत करते हैं, यज्ञाग्नि उसे लाखों-करोड़ों गुना बढ़कर वापस करती है। इसके अतिरिक्त दुर्गन्ध और अनेक प्रकार के रोगों का नाश होता है-यह 'अग्नि' की भेदन-शक्ति के गुण के ही फल, परिणाम एवं प्रभाव हैं जो अन्य किसी वस्तु में नहीं होते। संक्षिप्त में यज्ञ करने से स्वस्थ तन, शान्त मन और सुखी जीवन प्राप्त होता है।

परमात्मा की कृपा सब पर सदैव बनी रहे।

-मदन रहेजा

Websiste: http://vedicdharma.rahejas.org

Emali : madanraheja@rahejas.org

Blogs : vedicdharma.blogspot.com

अथ देवयज्ञ (अग्निहोत्र) विधि

मुख्य यजमान दम्पति (पति-पत्नी) को चाहिये कि वह यज्ञ के निर्धारित समय से पूर्व ही यज्ञ मण्डप में उपस्थित हो। यज्ञकर्म प्रारम्भ करते समय यजमान विनम्रता से हाथ जोड़कर आमन्त्रित पुरोहित/ऋत्विज् का स्वागत करे तथा उससे योग्य आसन पर विराजमान होने के लिये प्रार्थना करे कि, **ओ३म् आवसोः सदने सीद।** वह पुरोहित/ऋत्विज् आसन ग्रहण करते समय कहेगा **ओं सीदामि।** पुरोहित/ऋत्विज् के बैठने के पश्चात् यजमान स्वयं भी अपने आसन पर सुखावस्था में सीधे होकर बैठे। इस के पश्चात् पुरोहित के आदेशानुसार यज्ञकर्म की प्रक्रियाओं को श्रद्धा और प्रेम से करे। जैसे-जैसे पुरोहित निर्देशन करे वह वैसे-वैसे करने का प्रयास करे। निम्नलिखित मात्र दस क्रमों को ध्यान में रखे और शुद्ध मन्त्रों से प्रेमपूर्वक यज्ञ कर्मकाण्ड को 15-20 मिनिटों में सम्पन्न कर सकते हैं-

1. संकल्प मन्त्र, 2. आचमन मन्त्र, 3. अंगस्पर्श मन्त्र, 4. ईश्वर-स्तुतिप्रार्थनोपासना मन्त्र, 5. अग्न्याधान मन्त्र, 6. अग्निप्रदीप्तकरण मन्त्र, 7. जल-प्रसेचन मन्त्र, 8. आघारावाज्याहुति मन्त्र, 9. प्रातःकालीन/सायंकालीन मन्त्र और 10. पूर्णाहुति मन्त्र।

यजमान अपनी दाहिनी हथेली को स्वच्छ करे और फिर उसमें थोड़ा सा निर्मल जल ले और पुरोहित/ऋत्विज् जैसा आपसे बोलने को कहे वैसा संकल्प करे-

"ओ३म् तत्सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीय प्रहरार्द्धे वैवस्वत मन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलि प्रथम-चरणे (अमुक) संवत्सरे...अयने...ऋतौ...मासे...पक्षे...तिथौ... दिवसे...लग्ने...मुहूर्ते...अत्र...(स्थान का नाम) अहम् (कारण...जैसे सुख, समृद्धि एवं शान्ति) यज्ञकर्म करणाय भवन्तं वृणे।

ऋत्विज् कहेगा—वृतोऽस्मि। (जल को अपने आसन के सामने छोड़ देवे।

यदि आप अपने घर में स्वयं दैनिक यज्ञ करते हैं तो आप इस प्रकार से भी संकल्प कर सकते हैं—**'ओ३म् तत्सत् श्री ब्रह्मणो अहं अद्य स्वगृहे देवयज्ञादिकं शुभं कर्मं करणाय भवन्तं वृणे।'**

(पुरोहित के आदेशानुसार) यजमान दम्पति आचमन पात्र से दाहिनी हथेली में थोड़ा सा (छोटी चम्मच जितना) जल ले और निम्नलिखित तीन मन्त्रों से क्रमशः तीन बार आचमन करे। आचमन हथेली के पिछले भाग से ही करना चाहिये।)

ओम् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा॥ 1॥

(प्रथमाचमन करे।)

ओम् अमृतापिधानमसि स्वाहा॥ 2॥

(द्वितीय आचमन करे।)

ओम् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा॥ 3॥

(तृतीय और अन्तिम बार आचमन करे।)

(अब यजमान दम्पति आचमन पात्र से थोड़ा सा जल बाईं हथेली पर रखे और दाहिनी हथेली की मध्यमा और अनामिका उँगलियों से जल स्पर्श करते हुए निम्नलिखित मन्त्र पाठ करते हुए जिस-जिस अंग

का नाम आवे उस-उस अंग को पहले दाईं ओर फिर बाईं ओर स्पर्श करे।)

ओं वाङ्मऽ आस्येऽस्तु॥ 1॥

(इस मन्त्र से मुख को स्पर्श करे।)

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु॥ 2॥

(इस मन्त्र से नासिका के दोनों नथुनों को जल स्पर्श करे।)

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु॥ 3॥

(इस मन्त्र से दोनों नेत्र स्पर्श करे।)

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु॥ 4॥

(इस मन्त्र से दोनों कान स्पर्श करे।)

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु॥ 5॥

(इस मन्त्र से दोनों भुजाओं को स्पर्श करे।)

ओं ऊर्वोर्मऽ ओजोऽस्तु॥ 6॥

(इससे दोनों जंघाओं को स्पर्श करे।)

ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥ 7॥

(इस मन्त्र से सारे शरीर का मार्जन एवं जल के छींटे देवे।)

स्वच्छ वस्त्र या नैप्कीन/रूमाल से हाथ को पोंछ लेवे।

('वैदिक यज्ञ पद्धति' के अनुसार निम्नलिखित आठ मन्त्रों का उच्चारण एक पुरोहित या विद्वान् को ही करना चाहिये और यजमान दम्पति एवं सभी उपस्थित अतिथिगण सुखावस्था में बैठें और आँखें बन्द करके उन मन्त्रों को स्थिरचित्त होकर ध्यान से सुनें तथा उन मन्त्रों के अर्थ पर विचार करें। जिन महानुभावों को मन्त्र कण्ठस्थ हैं, वे अपने मन में भी पाठ कर सकते

हैं। स्मरण रहे कि ओ३म् का उच्चारण मात्र प्रथम मन्त्र के प्रारम्भ में ही करें तथा शेष सात मन्त्रों में न करें क्योंकि ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना का प्रकरण/विषय एक ही है अतः आर्ष ग्रन्थों के अनेक ऋषियों के मन्तव्यों के अनुसार उसमें ओ३म् का उच्चारण मात्र प्रथम मन्त्र में ही करने का विधान है सब मन्त्रों में नहीं।)

नोटः 'ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना' के निम्नलिखित आठ मन्त्रों का पाठ सभी वैदिक सोलह संस्कारों के प्रारम्भ में करने का विधान है।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आसुव॥ 1॥ (यजुर्वेद 30.3)

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम्॥ 2॥ (यजु. 13.4)

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ 3॥ (यजु. 25.13)

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽइद्राजा जगतो बभूव। यईशेऽअस्यद्विपदश्चतुष्पदःकस्मै देवायहविषा विधेम॥ 4॥ (यजु. 23.3)

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ 5॥ (यजु. 32.6)

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ 6॥ (ऋग्वेद 10.121.10)

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद

भुवनानि विश्वा। यत्र देवाऽ अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥ 7॥ (यजु. 32.10)

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम॥ 8॥ (यजु. 40.16)

(इतीश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाप्रकरणम्)

(यजमान को यह तैयारी यज्ञ प्रारम्भ से पहले ही करनी चाहिये कि दीपक जलाने के लिये पास में दीयासलाई (माचिस) उपलब्ध हो तथा एक ताम्बे के पात्र में छोटी-छोटी समिधाओं से घर बनाकर, उस के बीच में थोड़ा सा कपूर रखे जिससे समिधाओं में ठीक प्रकार से अग्नि प्रदीप्त हो सके।)

ओं भूर्भुवः स्वः॥ (गोभिलगृह्यसूत्र 1.1.11)

(इसके मन्त्रोच्चारण पश्चात् यजमान को चाहिये कि वह ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य के घर से यज्ञाग्नि लाये। यदि ऐसा सम्भव नहीं है तो दीयासलाई से दीपक को प्रदीप्त करे। पौराणिक मन्दिरों में तथा आर्यसमाजों की यज्ञशालाओं में जहाँ दैनिक प्रातः और सायं हवन/यज्ञ होता है और उनके यज्ञकुण्डों में अग्नि विद्यमान रहती है अतः उनको और कहीं से यज्ञाग्नि लाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यदि यह क्रिया यजमान करने में असमर्थ है तो पुरोहित भी कर सकता है।)

(अब यजमान स्रुवा में एक-दो कपूर टिकिया धर के अपने दाहिने हाथ से दीपक की लौ से स्पर्श करके प्रज्वलित कर उसे ताम्बे के पात्र में छोटी-छोटी समिधाओं से बने घर के मध्य में छोड़े और अग्नि को प्रज्वलित होने दे। निम्नलिखित प्रथम मन्त्रोच्चारण के अन्त में

उस प्रज्वलित अग्नि को यज्ञकुण्ड के मध्य में अर्पित करे। अब उस प्रज्वलित दीपक को ईशान दिशा (उत्तर-पूर्व) में तीसरी मेखला के ऊपर रखे।)

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे॥ 1॥

(यजु. 3.5)

ओम् उद् बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहित्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्तेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥ 2॥

(यजु. 15.54)

(अब निम्नलिखित तीन मन्त्रों से आठ अंगुल लम्बी (लगभग 7") तथा तर्जनी उँगली सी गोलाई जितनी चंदन की समिधाएँ एक-एक करके तीन समिदाधान करे। ये तीन चंदन की समिधाएँ एक-एक करके तीन समिदाधान करे। ये तीन चंदन की समिधाएँ पहले से ही घी के पात्र में पूरी तरह से डुबा कर रखे। यहाँ घी की आहुतियाँ नहीं देनी चाहिये।)

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम॥ 1॥

(मन्त्र समाप्ति पर प्रथम समिधा दोनों हाथों की दसों उँगलियों को स्पर्श करते हुए समर्पित भाव से यज्ञकुण्ड में अर्पित करे।)

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा। इदमग्नये-इदन्न मम॥ 2॥

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये

जातवेदसे स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम।। 3।।

(उपर्युक्त दो मन्त्रों से द्वितीय समिधा पहली समिधा की तरह प्रेम से प्रदान करे।)

तन्त्वा समिद्भिरंगिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा। इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदन्न मम।।। 4।।

(तृतीय समिधा भी पहले की तरह भक्ति भाव से अर्पित करे।)

(साफ़ और छिल्के-सहित समिधाओं का, घर की भाँति, एक-दूसरे के ऊपर (लम्बाई और चौड़ाई) यज्ञकुण्ड में ठीक प्रकार से चयन करे ताकि पाँच आहुतियाँ देते समय यज्ञाग्नि अच्छी तरह से प्रज्वलित हो सके। इस तरह पाँच आहुतियाँ यज्ञकुण्ड के मध्य में समिधाओं के ऊपर ही प्रदान करे। निम्नलिखित मन्त्र का पाँच बार उच्चारण करे तथा हर बार मन्त्र के अन्त में स्वाहा उच्चारण के साथ घृत से भरी स्रुवा की आहुति प्रदान करे। उपर्युक्त आहुतियाँ मात्र यजमान ही प्रदान करे (कुछ यज्ञस्थलों पर देखा जाता है कि आस-पास में उपस्थित लोग भी घी की अतिरिक्त आहुतियाँ देते हैं। यह अवैदिक प्रक्रिया है।)

(घी की आहुतियाँ मात्र यजमान को ही देने का विधान है, अन्य लोगों को नहीं।)

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्म-वर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे-इदन्न मम।। (आश्वलायनगृह्यसूत्र 1.10.12)

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व॥ 1॥ (गोभिलगृह्यसूत्र 1.3.1)

यजमान इस मन्त्र से दाहिनी अंजलि में जल लेकर यज्ञ कुण्ड के पूर्व भाग में—जहाँ दीपक रखा है (दक्षिण से उत्तर की ओर पहली मेखला के पास) छिड़कावे।

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व॥ 2॥(गोभिलगृह्यसूत्र 1.3.2)

इस मन्त्र पाठ के पश्चात् पहले की तरह जल को पश्चिम दिशा में (दक्षिण से उत्तर की ओर) छिड़कावे।

ओम् सरस्वत्यनुमन्यस्व॥ 3॥(गोभिलगृह्यसूत्र 1.3.3)

इस मन्त्र से जल उत्तर दिशा में (पश्चिम से पूर्व की ओर) छिड़कावे।

ओम् देव सविताः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥ 4॥

इस मन्त्र के पूरा होने पर वेदी के चारों ओर–पूर्व दिशा से जल छिड़काते हुए दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और अन्त में वहीं प्रारम्भ स्थान पर जल सेचन करे। हाथ को स्वच्छ सूती वस्त्र या नैप्कीन/रूमाल से पोंछ लेवे।

(निम्नलिखित चार मन्त्रों से घी की आहुतियाँ प्रदान कर अग्नि को अधिक प्रज्वलित करे। प्रथम दो मन्त्र आघारावाज्याहुति मन्त्र तथा शेष दो मन्त्रों को आज्यभागाहुति मन्त्र कहते हैं।)

ओम् अग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये इदन्न मम॥ 1॥

(इस मन्त्र से स्वाहा उच्चारण की समाप्ति पर वेदी के उत्तर भाग में यज्ञकुण्ड में प्रज्वलित समिधा के ऊपर आहुति समर्पित करे।)

ओं सोमाय स्वाहा॥ इदं सोमाय–इदन्न मम॥ 2॥

(इस मन्त्र से वेदी के दक्षिण भाग में प्रज्वलित समिधा के ऊपर आहुति प्रदान करे।) तत्पश्चात्

आज्यभागाहुति मन्त्रः

(निम्नलिखित दो मन्त्रों से वेदी के मध्य में आहुतियाँ समर्पित करे।)

ओं प्रजापतये स्वाहा।। इदं प्रजापतये-इदन्न मम।। 3।।

ओम् इन्द्राय स्वाहा।। इदमिन्द्राय-इदन्न मम।। 4।।

(यहाँ से घी के साथ-साथ परिवार या अन्य लोग भी (जो यज्ञ वेदी पर बैठे हैं) सामग्री की भी आहुतियाँ प्रदान करें।)

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा।। 1।।

(यजु. 3.9)

ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।। 2।।

(यजु. 3.9)

ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा।। 3।।

(यजु. 3.9)

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या। जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा।। 4।। (यजु. 3.10)

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा।। इदमग्नये प्राणाय-इदन्न मम।। 1।।

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा।। इदं वायवेऽपानाय-इदन्न मम।। 2।।

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा।। इदमादित्याय व्यानाय-इदन्न मम।। 3।।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा।। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः

प्राणापानव्यानेभ्यः-इदन्न मम॥ 4॥ (आधारित तैत्तिरीय उपनिषद् शिक्षा वल्ली 5, तैत्तिरीय आरण्यक 10.2)

ओम् आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा॥ 5॥ (तै. आ. 10.15)

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्यमेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥ 6॥

(यजु. 32.14)

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव स्वाहा॥ 7॥ (यजु. 30.3)

ओम् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिं विधेम स्वाहा॥ 8॥ (यजु. 40.16)

(यदि यजमान को अधिक आहुतियाँ प्रदान करने की इच्छा है तो वह अपनी इच्छानुसार प्रचलित गायत्री मन्त्र या विश्वानि देव...मन्त्रोच्चारण से आहुतियाँ प्रदान कर सकता है।)

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ या/और

(यजु. 36.3)

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव स्वाहा॥ 9॥ (यजु. 30.3)

यजमान निम्नलिखित मन्त्र से केवल घी की ही (सामग्री नहीं) तीन आहुतियाँ यज्ञकुण्ड के मध्य में प्रदान करे।

ओं सर्वं वै पूर्णं स्वाहा॥ (प्रथमाहुति)

ओं सर्वं वै पूर्णं स्वाहा॥ (द्वितीयाहुति)

ओं सर्वं वै पूर्णः स्वाहा॥ (तृतीयाहुति)

(स्मरण रहे कि पूर्णाहुति के पश्चात् किसी भी प्रकार की कोई भी आहुति प्रदान नहीं करनी चाहिये क्योंकि पूर्णाहुति मन्त्रों के साथ ही प्रातःकालीन यज्ञ/अग्निहोत्र का समापन होता है।)

'सायंकालीन यज्ञ में आघारावाज्याहुति के मन्त्र प्रातःकालीन मन्त्रों से कुछ अलग हैं।)

सायंकालीन अग्निहोत्र की आहुतियाँ

(सायंकालीन अग्निहोत्र की विधि प्रातःकालीन अग्निहोत्र की (क्रमांक 1 से 8 तक) भाँति है और आगे के मन्त्रों में कुछ-कुछ अन्तर इस प्रकार हैं-(आगे के मन्त्रों से घी के साथ-साथ सामग्री की भी आहुतियाँ प्रदान करें।)

ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा॥ 1॥

ओम् अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा॥ 2॥

ओम् (मौन उच्चारण) अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा॥ 3॥ (यजु. 3.9)

(ओम् और स्वाहा का उच्चारण अवश्य करें परन्तु मन्त्र के मध्य भाग का मन में मौनरूप से उच्चारण करें।)

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या। जुषाणोऽ-अग्निर्वेतु स्वाहा॥ 4॥ (यजु. 3.10)

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा॥ इदमग्नये प्राणाय इदन्न मम॥ 1॥

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा॥ इदं वायवेऽपानाय इदन्न मम॥ 2॥

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा॥ इदमादित्याय

व्यानाय इदन्न मम॥ 3॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापान-व्यानेभ्यः स्वाहा॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यःइदन्न मम॥ 4॥

ओम् आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा॥ 5॥ (आधारित तै. उ. शिक्षा. 5, तै. आ. 10.15)

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥ 6॥ (यजु. 32.14)

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव स्वाहा॥ 7॥ (यजु. 30.3)

अग्निहोत्र विशेष प्रश्नोत्तर

प्रश्न 1: यज्ञ और अग्निहोत्र (हवन अथवा होम) में अन्तर क्या है?

उत्तर: किसी भी सर्वहितकारी और कल्याणकारी शुभ कार्य को 'यज्ञ' की उपाधि से सम्बोधित कर सकते हैं। 'यज्ञ' के मुख्य तीन अर्थ होते हैं–देव-पूजा, संगतिकरण और दान। इन तीनों शुभ-कर्मों को सिद्ध करना हो तो वह 'अग्निहोत्र' अर्थात् हवन करने से पूरा होता है।

प्रश्न 2: अग्निहोत्र या हवन किसे कहते हैं?

उत्तर: हवनकुण्ड (अग्निहोत्र/हवन करने के लिए बनाया गया एक विशेष पात्र) की प्रज्वलित समिधाओं पर (अग्नि के ऊपर) वैदिक विधि-विधान से, मन्त्रोच्चारण करते हुए, गाय के 'शुद्ध घी' तथा ऋतुओं के अनुसार बनाई गई 'हवन सामग्री' की (कम से कम 16) आहुतियाँ अर्पित करने को 'अग्निहोत्र' या 'हवन' कहते हैं।

प्रश्न 3: यज्ञ और याग में क्या अन्तर होता है?

उत्तर: यज्ञ का अर्थ ऊपर स्पष्ट कर आये हैं कि प्रत्येक सर्वहितकारी कार्य को 'यज्ञ' कहते हैं। मीमांसादर्शन के अनुसार, यज्ञ-कर्मकाण्ड में जो विशेष अलग-अलग नामों से आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं, उन आहुतियों को 'याग' कहते हैं। शब्दकोष में भी 'याग' का यही अर्थ मिलता है।

प्रश्न 4: अग्निहोत्र करने का प्रयोजन क्या है?

उत्तर: अग्निहोत्र, हवन या होम करना एक प्रकार की वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसका मुख्य उद्देश्य या प्रयोजन है-वायुमण्डल की शुद्धि करना और रोगमुक्त वातावरण बनाना है, जिससे संसार के सब जीवधारी स्वस्थ और सुखी रह सकें, इसलिए वैदिक धर्म में अग्निहोत्र को 'सर्वश्रेष्ठतमम् (श्रेष्ठतम से भी अधिक श्रेष्ठ) कर्म' कहा गया है।

प्रश्न 5: अग्निहोत्र एक दिन में दो समय अर्थात् 'प्रातः और सायं' क्यों करना चाहिए?

उत्तर: यह हमारे प्राचीन आदि ऋषियों का आदेश है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी प्रात:कालीन यज्ञ (अग्निहोत्र) करने से वायुमण्डल की शुद्धि सायंकाल तक रहती है और सायंकालीन अग्निहोत्र से प्रात:काल तक वायुमण्डल शुद्ध रहता है। यहाँ ध्यान रखना चाहिए कि अग्निहोत्र सूर्य के प्रकाश में ही करना उचित है।

प्रश्न 6: स्वस्तिवाचन के मन्त्रों से हम क्या प्रार्थना करते हैं?

उत्तर: यज्ञ करते हैं घर, परिवार, आस-पास में सुख, समृद्धि एवं शान्ति के लिए। इसलिए सबसे पहले हम इन मन्त्रों से ईश्वर से सुख-समृद्धि की प्रार्थना करते हैं। ये मन्त्र चारों वेदों में से चुने गये हैं। यह 31 मन्त्रों का समूह है। इससे सब शुभ होता है।

प्रश्न 7: शान्तिकरण के मन्त्रों से हम क्या प्रार्थना करते हैं?

उत्तर: घर-परिवार तथा आस-पास में, सब ओर

सुख, समृद्धि और शान्ति बनी रहे इस निमित्त से शान्तिकरण के मन्त्रों का पाठ करते हैं। इन मन्त्रों द्वारा परमात्मा की प्रार्थना करने से हमारे विचार सकारात्मक होते हैं। इसमें 28 मन्त्र होते हैं।

प्रश्न 8: सबसे पहले 'संकल्प मन्त्र' क्यों बोला जाता है?

उत्तर: संकल्प का अर्थ होता है—दृढ़ निश्चय करना, व्रत लेना, पूर्ण निश्चय करना, प्रतिज्ञा करना। अग्निहोत्र प्रारम्भ करने से पूर्व हम सर्वव्यापक ईश्वर के समक्ष हाथ में जल लेकर जीवन में शुभ कार्यों के करने की प्रतिज्ञा करते हैं तथा आज की इस पवित्र वेला का भी स्मरण करके संकल्प लेते हैं। विश्व में जब से अग्निहोत्र की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई है तब से ही हमारे आदि प्राचीन ऋषियों ने समय की गणना आरम्भ की और आज तक वही गणना चली आ रही है। संकल्प मन्त्र में ईश्वर के समक्ष अग्निहोत्र करने वाले महानुभाव को वर्तमान समय की तिथि, स्थान आदि हर चीज का ज्ञान होना चाहिये। यह अच्छी बात है। कालान्तर में इससे समय की गिनती बिना भूल-चूक बनी रहती है।

प्रश्न 9: अग्निहोत्र प्रारम्भ करने से पूर्व तीन बार आचमन क्यों किया जाता है?

उत्तर: सर्वश्रेष्ठ कर्म 'अग्निहोत्र' करने से पूर्व हमें तीन बातों का ध्यान अवश्य करना चाहिये। 1. शुद्धता (पवित्रता), 2. सत्यता और 3. शीतलता। इन्हीं तीन बातों का ध्यान रखते हुए हम तीन मन्त्रोच्चारण के साथ तीन बार आचमन करते हैं और ईश्वर से विनम्र

प्रार्थना करते हैं कि वह हमारे भीतर, बाहर और सब ओर शुद्धता, सत्यता और शीतलता बनाये रखे। जल शुद्धता, निर्मलता और शीतलता का प्रतीक होता है इसलिए प्रथम आचमन से शारीरिक पवित्रता, द्वितीय आचमन से मानसिक पवित्रता और तृतीय आचमन से आत्मिक पवित्रता बनी रहे। ऐसी पवित्र भावना से तीन बार आचमन करना वैदिक विधि-विधान के अनुरूप है। यज्ञ की प्रत्येक क्रिया 'प्रतीक मात्र' होती है और बार-बार वही क्रिया करने से कालान्तर में उसका प्रभाव हमारे भौतिक और अभौतिक शरीर पर पड़ता है जिसके फलस्वरूप हमारे संस्कार भी शुद्ध-पवित्र होते हैं। आचमन से एक और विशेष लाभ होता है कि (थोड़ी मात्रा में जल पीने) हमारा गला भी गीला (तरल) रहता है जिससे आगे के मन्त्रोच्चारण करने में आसानी होती है।

प्रश्न 10: अङ्गस्पर्श क्यों करते हैं?

उत्तर: स्वच्छ जल को पवित्र माना गया है। शरीर के जिस अङ्ग का जल से स्पर्श किया जाता है उस समय वैसी भावना की जाती है कि प्रभु हमारी उस इन्द्रिय को शुद्ध-पवित्र और निर्मल कर रहा है। इस प्रकार हम मन्त्र बोलते हुए प्रत्येक अङ्ग को स्पर्श करते हैं और अपने में स्फूर्ति का अनुभव करते हैं। नहाने और अङ्ग-स्पर्श में बहुत बड़ा अन्तर होता है।

प्रश्न 11: चन्दन की तीन समिधाएँ क्यों अर्पित करते हैं?

उत्तर: तीन समिधाएँ अर्पित करने के पीछे का भाव यह है कि हम तीनों लोकों अर्थात् द्यौ-लोक

(चमकते सूर्य-तारे आदि), अन्तरिक्ष-लोक (विद्युत् बिजली) और पृथिवी-लोक (भौतिक अग्नि-प्रकाश) की अग्नियों को समर्पित करते हैं। चन्दन की समिधाएँ अर्पित करने से अधिक खुशबू का वातावरण उत्पन्न होता है।

प्रश्न 12: पहली समिधा उत्तर दिशा में, द्वितीय समिधा दक्षिण में और तीसरी समिधा यज्ञकुण्ड के मध्य में क्यों अर्पित की जाती है?

उत्तर: वास्तव में दिशाएँ दस होती हैं। 'उत्तर' (उत्तरायण) अर्थात् प्रकाश की दिशा और 'दक्षिण' (दक्षिणायन) अर्थात् दिशा अन्धकार की दिशा मानी जाती है, इसलिए पहली समिधा हवनकुण्ड के उत्तरी भाग में और दूसरी समिधा दक्षिण भाग में प्रदान की जाती है और तीसरी समिधा हवनकुण्ड के मध्य में अर्पित की जाती है। इस भावना से सब दिशाओं का समावेश हो जाता है।

प्रश्न 13: उपर्युक्त तीन चन्दन की समिधाएँ तर्जनी उँगली के समान चौड़ी, गोल और उनकी लम्बाई मात्र आठ उँगलियों के बराबर क्यों होनी चाहिये?

उत्तर: हमारे आदि ऋषियों ने अग्निहोत्र करने का विधि-विधान (तरीका) गंभीरता से सोच-समझ कर वैज्ञानिक ढंग से ही बनाया है। अग्निहोत्र के आरम्भ में अग्नि अधिक प्रज्वलित नहीं होती अत: उसमें छोटी-छोटी समिधाएँ अर्पित की जाती हैं; इसलिए अग्निहोत्र के लिए एक पैमाना बनाया गया है कि तीन समिधाएँ एक जैसी, एक बराबर हों जिससे अग्नि प्रज्वलित होने में कोई कठिनाई न हो। ये तीन समिधाएँ यदि चन्दन की

लकड़ी की उपलब्ध हों तो उसकी खुशबू से यज्ञशाला महक उठती है। एक बार अग्नि अच्छी तरह से प्रज्वलित हो, बाद में यज्ञकुण्ड के पैमाने के अनुकूल सूखी और बड़ी समिधाएँ प्रदान कर सकते हैं।

प्रश्न 14: यज्ञ में एक बार एक मौन आहुति देने का विधान है-ऐसा क्यों?

उत्तर: मौन आहुति अर्थात् उस मन्त्र का मन में उच्चारण करके समिधा अर्पित करना–उसका कारण यह बताया जाता है कि 'मन हमारी सब इन्द्रियों का राजा होता है (सब इन्द्रियाँ मन के अधीन होती हैं) अर्थात् बिना मन की आज्ञा के कोई भी इन्द्रिय काम नहीं करती, इसलिए मन का विशेष स्थान होता है उसी को ध्यान में रखकर एक मौन आहुति अर्पित करने का विधान है। कुछ विद्वान् ऐसा भी मानते हैं कि मौन रहने से 'अहंकार से मुक्ति' भी मिलती है अत: 'मौन संध्योपासना' अधिक लाभकारी होती है।

पुराणों में एक कथा आती है: एक बार वाक्–इन्द्रिय और मन की आपस में बहस छिड़ गयी कि दोनों में से कौन बड़ा? (कहानी लम्बी है) संक्षिप्त में वाद–विवाद के उपरान्त यही निर्णय हुआ कि बिना मन की आज्ञा के सब इन्द्रियाँ कोई कार्य नहीं कर सकतीं अर्थात् मन की प्राथमिकता सर्वोपरि है।

बिना मन के कोई कुछ नहीं कर सकता! इसलिए एक मौन आहुति से हम मन से भी आहुति प्रदान करते हैं।

प्रश्न 15: किसी भी यज्ञ के समापन पर (धार्मिक पूजा-पाठ के अंत में) तीन बार ही

शान्तिः शान्तिः शान्तिः का उच्चारण क्यों किया जाता है?

उत्तरः इस संसार में जितने भी प्राणी रहते हैं, सब सुख चाहते हैं, कोई दुःख नहीं चाहता! यदि ग़ौर किया जाए तो सब प्रकार के दुःखों के मुख्य तीन ही कारण होते हैं, जिनको दार्शनिक भाषा में—1. आध्यात्मिक दुःख, 2. आधिभौतिक दुःख और 3. आधिदैविक दुःख कहते हैं। इन तीनों प्रकार के दुःखों से बचने के लिए हम ईश्वर से तीन बार '**शान्तिः शान्तिः शान्तिः**' बोलकर अपने जीवन में शान्ति बनाये रखने की प्रार्थना करते हैं।

प्रश्न 16: उपर्युक्त तीनों 'आध्यात्मिक', 'आधिभौतिक' और 'आधिदैविक' दुःख क्या होते हैं और क्यों होते हैं?

उत्तरः आपने ज्ञानवर्धन प्रश्न पूछा है। 1. आध्यात्मिक दुःख वे होते हैं जिन्हें मनुष्य अपनी ही मूर्खता, नादानी और अज्ञानता के कारण भोगते हैं—जैसे आवश्यकता से अधिक खाना-पीना, नशे की हालत में चलना, बेपरवाही से गाड़ी चलाना, ग़लत दवाई खा लेना एवं ठोकर खाना आदि। 2. आधिभौतिक दुःख उनको कहते हैं जो दूसरों की नादानी या अज्ञानता के कारण आपको सहने पड़ते हैं, जैसे किसी गाड़ी ने आपको ठोकर मार दी, किसी जानवर ने काट लिया, दुर्घटना में कोई हानि हो गई आदि आदि। और 3. आधिदैविक दुःख वे होते हैं जो अनेक प्राकृतिक विपदाओं के कारण मनुष्य को लाचारी में भुगतने पड़ते हैं जैसे दुर्घटना, जरूरत से अधिक गरमी या सर्दी का होना, तेज़ बारिश का कहर,

बाढ़ से सामना, अचानक तूफान, वातचक्र (Twisters), धुन्ध या समुद्री तूफान (सूनामी) (Tsunami) इत्यादि से भी अनेक प्रकार की बाधाओं और दुःखों का सामना करना पड़ता है। ईश्वर सबको सद्बुद्धि प्रदान करे इसलिए तीनों प्रकार के दुःखों से बचने तथा अपनी रक्षा करने के लिए हम संसार में 'शान्ति' बनाये रखने की तीन बार प्रार्थना करते हैं।

प्रश्न 17: क्या ईश्वर हमारी प्रार्थना सुनता है?

उत्तर: हमारा मन स्वच्छ-निर्मल हो और यदि हम उसकी सम्पूर्ण आज्ञाओं का पालन करते हैं तो वह अवश्यमेव हमारी प्रार्थनाओं को सुनता है और पूरी भी करता है।

प्रश्न 18: यज्ञकुण्ड में सीधे (दाहिने) हाथ से ही आहुति क्यों देते हैं, उलटे (बाएँ) से क्यों नहीं?

उत्तर: यह वैदिक परम्परा है कि प्रत्येक शुभकर्म सीधे हाथ से ही किये जाते हैं और क्योंकि यज्ञकर्म सर्वश्रेष्ठ कर्म होता है इसलिए अग्निहोत्र की सब क्रियाएँ सीधे हाथ से ही करने का विधान है। आप सीधे (सही) रास्ते से जाते हैं या उलटे (ग़लत) रास्ते से? मूर्ख व्यक्ति भी ग़लत रास्ते से नहीं जाता क्योंकि जो सही है उसी रास्ते से जाना चाहिए। Right is always right.

कुछ लोग बचपन से ही lefty होते हैं, सब काम अपने बाएँ हाथ से ही करते हैं। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या वे बाएँ हाथ से आहुति दे सकते हैं? उनके लिए यही उत्तर है कि यदि उनको यज्ञाग्नि में सीधे हाथ से

आहुति देने में परेशानी होती है तो उनको बाएँ हाथ से देने में रोकना या टोकना नहीं चाहिए। यदि उस व्यक्ति की भावना शुद्ध पवित्र है तो दूसरे लोगों को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। ईश्वर हमारी मन की भावनाओं को देखता है, परखता है।

प्रश्न 19: मन्त्रोच्चारण संस्कृत में ही क्यों होते हैं?

उत्तर: सृष्टि के आदि में, मानव उत्पत्ति के समय वेदवाणी (जिस भाषा में वेद लिखे हैं) या देववाणी भी कहते हैं, बोली और समझी जाती थी जिसे आज हम 'संस्कृत' भाषा के नाम से जानते हैं। वेद इसी वेदवाणी में उपलब्ध हैं इसलिए मन्त्रोच्चारण वेदवाणी में ही होते हैं। यही एक ऐसी पवित्र वाणी (भाषा) है जिससे संसार की अनेक भाषाएँ उत्पन्न हुई हैं। संस्कृत से ही मानवमात्र की संस्कृति की जड़ें विकसित होती हैं। वेदमन्त्र ईश्वरीय पवित्र वेदवाणी में ही होने चाहियें तभी तो उच्चारण करने से आनन्द की अनुभूति होती है।

क्रिश्चियन समुदाय के लोग गॉड की प्रार्थना रोमन या इंग्लिश में करते हैं और उसी तरह मुसलिम मज़हब वाले अरबी में करते हैं। यह उनकी परम्परा है। वास्तव में ईश्वर सबके मन के भाव समझता है। उसके लिए संसार की कोई भाषा समझना कठिन नहीं है। मन्त्रोच्चारण केवल और केवल देववाणी अर्थात् संस्कृत में ही होते हैं।

प्रश्न 20: यज्ञकुण्ड का आकार हमेशा चौकोणा क्यों होता है? छ:कोना या अष्टकोणा

या गोलाकार क्यों नहीं?

उत्तर: यज्ञकुण्ड का आकार देश, काल, परिस्थिति और उपस्थिति के अनुसार बदला जा सकता है। इसमें कोई आपत्ति वाली बात नहीं है। सामान्य तौर पर चौकोर होता है क्योंकि इसका निर्माण बड़ी आसानी से किया जाता है। यहाँ एक बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि उसके निर्माण के समय उसका परिमाण ठीक हो! इस विषय की अधिक जानकारी के लिया महर्षि स्वामी दयानन्द कृत 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' पढ़ सकते हैं।

प्रश्न 21: अग्निहोत्र सूर्य के प्रकाश में ही क्यों करना चाहिए, रात्रि में क्यों नहीं?

उत्तर: अग्निहोत्र सूर्य के प्रकाश में ही करने का विधान है क्योंकि यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया (Scientific Process) है जो वैदिक सिद्धान्त के अनुकूल है।

शुद्ध वातावरण बनाये रखने में पेड़, पौधे, वृक्ष आदि सबसे अधिक भूमिका निभाते हैं क्योंकि वृक्षादि सूर्य के प्रकाश में Co_2 (कार्बन-डाइ-ऑक्साइड) (जहरीली गैस) ग्रहण करते हैं और O_2 (ऑक्सीजन) (जीवनदायी गैस) छोड़ते हैं और सूर्य के प्रकाश के अभाव में (अँधेरे में) उनका प्रभाव विरुद्ध हो जाता है अर्थात् वे Co_2 (कार्बन-डाइ-ऑक्साईड) गैस छोड़ते हैं और O_2 (ऑक्सीजन) ग्रहण करते हैं। आप जानते ही हैं कि प्राणधारियों के लिए ऑक्सीजन गैस जीवनदाई है और कार्बन-डाइ-ऑक्साईड गैस अत्यन्त हानिकारक होती है। इन्हीं महत्त्वपूर्ण कारणों से 'अग्निहोत्र की

प्रक्रिया' सूर्य के प्रकाश में ही करना उचित है।

हमारे यहाँ कुछ लोगों के घरों में विवाह संस्कार की रस्में रात्रि में ही होती हैं। रात्रि में ही 'अग्निहोत्र' सम्पन्न होता है अतः यह विवाह संस्कार कराने वाले पण्डितों का कर्त्तव्य बनता है कि वे अपने यजमानों को अग्निहोत्र के बारे में विशेष जानकारी उपलब्ध कराएँ, आगे उनकी इच्छा!

प्रश्न 22: ईश्वर सर्वज्ञ है, सब कुछ जानता है तो उससे प्रार्थना क्यों?

उत्तर: हम सब कहते हैं कि 'ईश्वर हम सबका माता-पिता है' वह जानता भी है कि सवेरे उठते ही हमें भूख लगती है तो क्या ईश्वर सवेरा होते ही हमें खाना पकाकर खिलाएगा? क्या वह हमारी पसंद का (शाकाहारी या मांसाहारी) नाश्ता बनाकर नाश्ता कराएगा? हमारे लिये पानी के गिलास धोकर पानी भरकर पिलाएगा? ईश्वर हमारा स्वामी है, मालिक है, सब कुछ है (कोई सेवक नहीं!)। एक बात को अच्छी तरह से समझ लें कि ईश्वर के कार्य मात्र ईश्वर ही कर सकता है (मनुष्य नहीं कर सकता है) और मनुष्य के कार्य मनुष्य ही कर सकता है (ईश्वर सब कुछ कर सकता है पर मनुष्य का काम मनुष्य को ही करने पड़ते हैं, ईश्वर कदापि भी नहीं करता)। ईश्वर स्तुति-प्रार्थना-उपासना से हमें कार्य करने की शक्ति, सहस और प्रेरणा प्रदान करता है! कभी इस भूल में न रहें कि प्रार्थना करने से ईश्वर हमारे उपर्युक्त काम करता है—वह कभी नही करता हैं!

प्रश्न 23: महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत

'संस्कारविधि' में 'ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य' के घर से अग्नि लाने को क्यों कहा गया है? क्या शूद्र के घर की अग्नि अपवित्र होती है?

उत्तरः अग्नि अपवित्र नहीं होती अपितु वह स्वयं में पवित्र होती है और जो वस्तु उसके संपर्क में आती है वह भी निर्मल या भस्म हो जाती है। वास्तव में जन्म से सभी मनुष्य शूद्र ही उत्पन्न होते हैं। अपने-अपने कर्म-क्षेत्र के अनुसार ही प्रत्येक व्यक्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र बनता है। पूर्वकाल में सब श्रेष्ठ लोगों के घरों में अग्निहोत्र होता था तथा ब्राह्मणों इत्यादि के यहाँ एक अलग से ऐसा भी यज्ञकुण्ड होता था जिसमें यज्ञाग्नि को अखण्ड जीवित रखने का विधान था जिसको राख या मिट्टी से दबाए रखते थे और जब आवश्यकता पड़े या कोई माँगने आए तो उस कुण्ड के ऊपर से राख हटाकर अर्ध-जली समिधा दे दी जाती थी और उसको प्रयोग में लाया जाता था। यह बहुत पहले की पुरानी बातें हैं, पर वर्तमान में वह पहले वाला रूप नहीं रहा! आजकल तो सबके घरों में दीयासलाई आसानी से उपलब्ध हो जाती है अतः किसी दूसरे के यहाँ से कोई चीज माँगने की आवश्यकता नहीं पड़ती! यह सब पहले की बातें हैं।

शूद्र (अशिक्षित) लोग वैसे भी यज्ञ आदि श्रेष्ठतम नहीं करते। यदि शूद्र भी अग्निहोत्र करें तो वे शूद्र नहीं, अपितु ब्राह्मण हो जाएँगे। इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है।

विशेषः जिन परिवारों में नियमपूर्वक प्रातः और सायं दोनों समय अग्निहोत्र होता है उन घरों के यज्ञकुण्डों

में यज्ञाग्नि सदा जलती रहती है ऐसी यज्ञाग्नि को 'आहिताग्नि' कहते हैं।

प्रश्न 24: समिदाधान में पहली समिधा के साथ एक मन्त्र और दूसरी समिधा प्रदान करते समय दो मन्त्र और अन्तिम तीसरी समिधा के साथ फिर एक ही मन्त्र क्यों बोलते हैं? समधिाएँ तीन और मन्त्र चार क्यों?

उत्तरः यज्ञ मात्र एक क्रिया नहीं अपितु सृष्टि विज्ञान का एक नक़्शा भी है जिसमें हमें सृष्टि-विज्ञान को समझाया जाता है। समिदाधान में मन्त्र चार होते हैं और समिधाएँ तीन हैं। ब्रह्माण्ड में तीन लोक होते हैं। पहला लोक है—द्यौ लोक जिसमें सूर्य की अग्नि विद्यमान है, दूसरा लोक है—अन्तरिक्ष लोक जिसमें विद्युत् (बिजली) होती है और तीसरा लोक है—हमारा पृथिवी लोक जिसमें भौतिक अग्नि (यज्ञाग्नि) होती है और जिसके साथ एक दूसरा पदार्थ भी विद्यमान होता है—वायु। तीनों लोकों में तीन अग्नियाँ विद्यमान होती हैं जिनको समर्पित करने के लिए वैदिक विधान में इन तीन समिधाओं को ही अर्पित करने विधान है।

1. प्रथम मन्त्र उच्चारण के पश्चात् प्रथम समिधा प्रदान की जाती है यह द्युलोक की सूर्य की अग्नि के लिए प्रतीक के रूप में समर्पित की जाती है।

2. दो मन्त्रों का एक साथ उच्चारण करने के पश्चात् द्वितीय समिधा प्रदान की जाती है। दो मन्त्रों का उच्चारण करना दो पदार्थों 'विद्युत् और वायु' का प्रतीक समझना चाहिए तथा एक समिधा वही एक ही रहती है।

3. तृतीय अर्थात् अंतिम समिधा पृथिवी की भौतिक अग्नि के लिए समर्पित की जाती है। समिधाएँ प्रतीक मात्र होती हैं।

इस प्रकार समिधाएँ तीन और मन्त्र चार हो जाते हैं।

नियमः इसमें चन्दन की कुल तीन समिधाएँ होती हैं (प्रत्येक समिधा आठ-आठ अंगुल लंबी, तर्जनी की अंगुली के बराबर चौड़ी गोल और पूरी तरह से गाय के शुद्ध घी में डूबी हुई होनी चाहियें। तीन समिधाओं से चार मन्त्र बोलने होते हैं। इसका यही विधान बनाया गया है कि पहले मन्त्र की समाप्ति पर एक समिधा दोनों हाथों के मध्य में (नमस्ते की मुद्रा में) पकड़कर अर्पित करें। उसी तरह आगे के दो मन्त्र बोलकर दूसरी समिधा और वैसे ही तीसरी समिधा चौथे अन्तिम मन्त्रोच्चारण के बाद श्रद्धापूर्वक अर्पित करें।

प्रश्न 25:'ओम् अयन्त इध्म आत्मा' इस एक ही मन्त्र से घृत की पाँच आहुतियाँ क्यों दी जाती हैं?

उत्तरः अग्निहोत्र में मन्त्रों का क्रम और विधि हमारे पूर्व ऋषियों ने सोच-समझकर बनाया है। अब उन पर प्रत्येक विधि पर बेतुके प्रश्न या शंका करना अनुचित है! दो मन्त्र क्यों या पाँच मन्त्र क्यों उच्चारण किये जाते हैं, उनको जानने के लिए आपको अनेक आर्ष-ग्रन्थों का स्वाध्याय करना पड़ेगा अन्यथा मात्र प्रश्न करके स्वयं तथा दूसरों का समय व्यर्थ करना है।

कुछ विद्वानों का ऐसा मानना कतई ग़लत है-पाँच बार **'अयन्त इध्म आत्मा'** मन्त्रोच्चारण से, उतने समय में यज्ञाग्नि ठीक तरह से प्रज्वलित हो जाती है

जिसके बाद अग्निहोत्र की शेष क्रियाएँ ठीक तरह से संपन्न हो जाती हैं। यह तर्क इसलिए उचित नहीं है क्योंकि इससे पहले हम समिदाधान के एक मन्त्र में **'सुसमिधाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन'** यही बात कह चुके हैं कि 'इस अच्छी प्रकार से प्रज्वलित समिधा पर गरम-गरम घी प्रदान कर रहे हैं। (क्योंकि मन्द अग्नि में अग्निहोत्र करने का आनन्द नहीं आता)। यज्ञ का लाभ प्रज्वलित यज्ञाग्नि में ही मिलता है।

कुछ विद्वान् पण्डित 'पाँच बार मन्त्र दोहराने के पीछे' यह भी तर्क देते हैं कि याज्ञिक परमात्मा से पाँच प्रकार की वस्तुओं की माँग करता है—प्रजा (सुशील संतान), पशु (वाहन), ब्रह्मवर्चस (ईश्वर-प्राप्ति के साधन), अन्न (भोग्य-पदार्थ) और पाचन-शक्ति अर्थात् पूर्ण स्वास्थ्य। इसलिए पाँच बार वही मन्त्र बोला जाता है। यह भी एक कुतर्क है। किसी मन्त्र में यदि आप सात वस्तुएँ माँग रहे हैं तो वह मन्त्र क्या सात बार बोलेंगे? जैसे 'स्तुता माया वेदमाता...आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्...।

क्योंकि अग्निहोत्र का मुख्य लाभ वायुमण्डल एवं जल की शुद्धि होती है।

प्रश्न 26: जल प्रसेचन क्यों किया जाता है?

उत्तर: यज्ञकुण्ड के चारों ओर नाली बनाने का कहीं विधान है ही नहीं और न ही पानी से भरने का विधान है। यहाँ यज्ञकुण्ड के चारों ओर जल छिड़कने का विधान है। यहाँ भी सृष्टि विज्ञान ही समझाया गया है कि पृथ्वी के चारों ओर जल ही जल है।

वेद में यज्ञ को 'अध्वर' कहा है अर्थात् यज्ञ

(अग्निहोत्र) की किसी भी क्रिया भूल-चूक से भी कोई हिंसा नहीं होनी चाहिये। कुछ लोग ऐसा जल-सेचन का तर्क देते हैं कि जल-सेचन करने से यज्ञकुण्ड के चारों ओर में एक प्रकार की लक्ष्मण रेखा सी बन जाती है जिसके भीतर कोई सूक्ष्म जीव, चींटी, कीड़ा आदि अग्नि की तपिश से जल कर मृत्यु को प्राप्त न हो जाये, इसी को ध्यान में रखकर यज्ञकुण्ड के चारों ओर जल का छिड़काव किया जाता है। यह तर्क भी त्रुटिपूर्ण है क्योंकि आजकल घरों तथा मंदिरों में स्वच्छता का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है।

प्रश्न 27: आघारावाज्य आहुतियों से उत्तर तथा दक्षिण में, आज्यभागाहुतियों से मध्य में ही क्यों आहुतियाँ दी जाती हैं?

उत्तर: यह कोई समझदारी वाला प्रश्न नहीं है। यदि पहली आहुति उत्तर दिशा में दें तो 'उत्तर में क्यों' और यदि दक्षिण से शुरू करें 'दक्षिण में क्यों?' इस प्रकार आप कभी किसी भी दिशा से सन्तुष्ट नहीं हो सकते। हमें ऋषियों के बनाये विधान को ही सत्य मानकर स्वीकार करना चाहिये। क्योंकि मनुष्य कभी किसी बात से संतुष्ट नहीं होता! कहीं से तो शुरुआत करनी पड़ेगी न? आप ऐसे समझो कि 'उत्तर' प्रकाश की दिशा है, फिर दक्षिण अन्धकार की दिशा है और अन्य सब दिशाओं का प्रतीक है मध्य (भुवनस्य नाभिः)। जिन ऋषियों ने जो विधान बनाया है वही चला आ रहा है।

प्रश्न 28: स्विष्टकृत आहुति क्यों दी जाती हैं?

उत्तर: दैनिक अग्निहोत्र में ' स्विष्टकृत आहुति'

का विधान है ही नहीं। यह स्विष्टकृत आहुति की विधि बड़े-बड़े यज्ञों-यागों के लिए होती है, जिसमें अनेक क्रियाएँ संपन्न करनी होती हैं। वहाँ त्रुटियाँ रह जाने का भ्रम, शंका या संशय बना रहता है अतः स्विष्टकृत या प्रायश्चित्त आहुति देने का विधान है।

अब कोई यह भी प्रश्न कर सकता है कि-'हम दिन में दो बार यज्ञ (अग्निहोत्र) करते हैं और हर बार प्रायश्चित्त करते हैं! क्या हम एक बार भी सही ढंग से अग्निहोत्र नहीं कर सकते?' इसका उत्तर यह है कि आपकी बात तो सही है। दस-पन्द्रह मिनिट में दैनिक अग्निहोत्र सम्पन्न होता है। हम अनेक वर्षों से अग्निहोत्र करते आये हैं। क्या हम ठीक तरह से दैनिक अग्निहोत्र भी नहीं कर सकते?

प्रश्न 29: बलिवैश्वदेव आहुतियाँ क्यों दी जाती हैं?

उत्तरः मनुष्य अपने लिए तो सब कुछ करता ही है। परंतु परोपकार की भावना से वह अन्य छोटे-छोटे पशु-पक्षियों को भी ध्यान में उनका हिस्सा अलग से रखता है। एक आहुति उनके लिये भी दी जाती है और उनका हिस्सा अलग रखा जाता है।

प्रश्न 30: प्रज्वलित दीपक को यज्ञकुण्ड के समीप उत्तर-पूर्व स्थान में क्यों रखा जाता है?

उत्तरः प्रकाश की दो दिशाएँ होती हैं। पूर्व दिशा में सूर्य प्रकाश देता है और उत्तर में ध्रुव तारा। याज्ञिक लोग दोनों पूर्व और उत्तर दिशाओं का प्रतिनिधि या प्रतीक मानकर प्रज्वलित दीपक को उत्तर-पूर्व दिशा (ईशान) में रखते हैं।

प्रश्न 31: यज्ञ से धुँआ होता है जिससे वायु प्रदूषण बढ़ता है और ऑक्सीजन भी खर्च होती है। क्योंकि कोई चीज तभी जलती है जब उसे ऑक्सीजन मिले।

उत्तर: यज्ञ से प्रदूषण कदापि नहीं होता। जितना ऑक्सीजन खर्च होता है उससे कहीं ज्यादा बढ़ता है। प्रदूषण दूर होता है।

यज्ञ पूर्णत: वैज्ञानिक प्रक्रिया है।

यज्ञो वै श्रेष्ठतम् कर्म:

यज्ञ से श्रेष्ठ कोई कार्य नहीं है।

यज्ञ को अग्निहोत्र भी कहते हैं।

अग्निहोत्र का अर्थ है जल, पृथ्वी, वायु आदि की शुद्धि के लिए डाली गयी आहुतियां।

यज्ञ केवल कर्मकाण्ड ही नहीं बल्कि चिकित्सा पद्धति भी है।

यज्ञ करते समय हम जो विभिन्न मंत्रोच्चारण करते हैं उसका हमारे मन, मस्तिष्क, व आत्मा पर विशेष प्रभाव पड़ता है। साथ-साथ वातावरण भी शुद्ध होता है। यज्ञ को हवि भी कहते हैं जिसका अर्थ है विष को हरने वाला।

विज्ञान के सिद्धान्त के अनुसार कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं होता है, हाँ उसका रूप बदला जा सकता है।

(By law of conservation of mass we know that mass cannot be created nor destroyed in a chemical reaction)

मदन रहेजा

यज्ञ : क्या? क्यों? कैसे?

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने यज्ञ पद्धति पर सूक्ष्मता से विचार किया है तथा यज्ञ पद्धति में आई विकृतियों को दूर करने के उपाय भी सुझाये हैं। लेखक के सुझाव तर्क और प्रमाण से समन्वित हैं।

विधियुक्त तथा शास्त्रीय निर्देशानुसार यज्ञीय प्रक्रियाओं का पालन ही पूर्णतया लाभ की दृष्टि से अपेक्षित है।

यज्ञ-विधि के साथ-साथ यज्ञ से संबंधित लगभग सभी सम्भावित प्रश्नों पर भी लेखक ने गहराई से विचार किया है। सीमित पृष्ठों में लेखक ने सरलतापूर्वक सभी ज्ञातव्य तथ्यों से पाठकों को अवगत कराया है।

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द